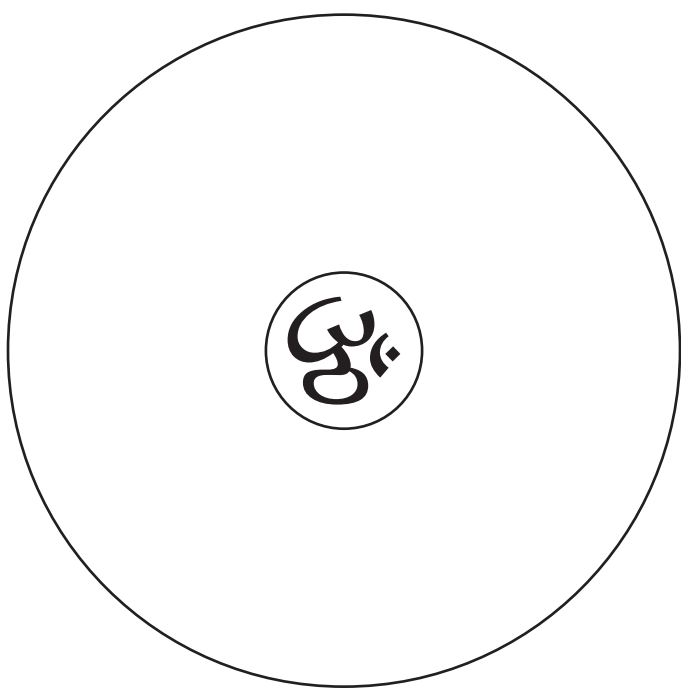


विशद

श्री स्वामिसमन्तभद्राचार्य विरचित

वृहत स्वयम्भू स्तोत्र

माण्डला



रचयिता :

प. पू. साहित्य रत्नाकर आचार्य श्री 108 विशदसागर जी महाराज

Nfr % fo'knogtoBkwrksk
 i|uqkn % i-iw-lkgr; jukdj] {kewfz
 vkpk;ZJh.108 fo'knlkxjthegekjt
 hqjk % izfks&2016* izfr;kj %1000
 ladyu % eqfuJh.108 fo'kkylkxjthegekjt
 lgksh % {kqyJh.105 folk sellxjthegekjt
 {q-JhKfDkKjhekrth] {q-JhKfRly;HkKjhekrth
 haku % cz-Tjksfrhri/982907608/cz-vkKkhrh]cz-liukrth
 hjsu % cz-lkswrth]cz-vkjhrth
 lEdZlwk % 9829127533] 9953877155
 izkfrky % 1 tsuljsoj]fefr]fueZdpekjsk
 2142]fueZyudpt]jfm;kskdsV
 efugjsack]Lrk]t;iqj
 Qksu%0141&2319907/4kj/eks-%9414812008
 2 JhJts'kdpkjtSuBdkj
 ,&107]cqk.fogkj]vyoj]eks-%9414016566
 3 fo'knlkgr;dsuz
 Jhfr;Ejtsueafnjdk;kyktSuiqj
 jsdMh/gfj;k.kk&4]9812502062]0941688879
 4 fo'knlkgr;dsuz]gh'ktSu
 t;vfjgUrV'sMLZ]6561.usg:xyh
 fu;jykydUkhpksd]xka/khuxj]frvyh
 eks-09818115971]09136248971
 5 % 25@:#-eksk

स्वयंभू स्रोत

आदिनाथ स्तवन

स्वयंभूवा भूत-हितेन भूतले, समञ्जस-ज्ञान-विभूति-चक्षुषा।
विराजितं येन विधुन्वता तमः, क्षपा-करेणोव गुणोत्करैः करैः॥1॥

सत्त्व हितैषी स्वयंभूत है, जिनका नेत्र समंजस ज्ञान।
वस्तु तत्त्व के निर्णायक 'शुभ, जिस विभूति से हैं अम्लान॥
अन्धकार नाशी किरणों युत, जैसे सोहे निशि में चन्द्र।
गुण समूह युत उसके जैसा, सदा विराजित वसुधानन्द॥1॥

अन्वयार्थ- जो स्वयंभू थे, दूसरे के उपदेश के बिना मोक्षमार्ग को जानकर तथा उस रूप आचरण कर, अनन्तचतुष्टय स्वरूप हुये थे। प्राणियों के लिए हितकारक थे। सम्यग्ज्ञान की विभूति रूप नेत्र से युक्त थे और स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति में कारणभूत गुणों के समूह से युक्त, वचनों के द्वारा ज्ञानावरणादि कर्म रूप अज्ञान को नष्ट करते हुए जो पृथ्वीतल पर अर्थ प्रकाशकत्व आदि गुणों से युक्त किरणों के द्वारा अंधकार को नष्ट करते हुए चन्द्रमा के समान सुशोभित होते थे।

प्रजापतिर्यः प्रथमं जिजीविषुः शशास कृष्यादिषु कर्मसु प्रजाः।
प्रबुद्ध-तत्त्वःपुनरद्भुतोदयो, ममत्वतो निर्विदिदे विदांवरः॥2॥

कृषि आदिक का प्रजा जनो को, दिया जीविकोचित उपदेश।
अतः आप कहलाए जग में, प्रथम प्रजा स्वामी परमेश॥
तत्त्व बोध को पाने वाले अद्भुत उदयी हे धी मान।
त्याग ममत्व हुए वैरागी, पाए उज्ज्वल केवल ज्ञान॥2॥

अन्वयार्थ- जो तीन लोक की समस्त जनता के स्वामी थे, जिन्होंने कर्म भूमि के प्रारंभ में मति श्रुत और अवधिज्ञान के द्वारा लोगों के कर्म तथा उनके फलों को जानकर जीवित रहने की इच्छुक जनता को खेती आदि आजीविका के उपयोगी छह कार्यों में शिक्षित किया था और फिर हेय-उपादेय तत्त्व को अच्छी तरह जानकर इन्द्र आदि के द्वारा की हुई

आश्चर्यकारी विशिष्ट विभूति को प्राप्त होते हुए जो ममता भाव से परिग्रह विषयक आसक्ति से विरक्त हो गये थे तथा इन सब कारणों से जो श्रेष्ठ ज्ञानी हुए थे।

विहाय यः सागर-वारि-वाससं, वधूमिवां वसुधा-वधूं सतीम्।
मुमुक्षुरिक्ष्वाकू-कुलादिरात्मवान्, प्रभुः प्रवव्राज सहिष्णुरच्युतः॥३॥

जिन इक्ष्वाकू कुलाग्रणी ने, किया बन्धु का भी ज्यो त्याग।
सागर वसना वसुधा का भी, त्याग किए है त्यों अनुराग।
सहनशील वे अच्युत जिनवर, दीक्षा ले सन्यास लिए।
आत्मभाव उन शिवगामी को, सभी पुनीत प्रशस्त किए॥३॥

अन्वयार्थ— जो मोक्ष के अभिलाषी अथवा संसार समुद्र से पार उतरने के इच्छुक थे, जितेन्द्रिय थे, सामर्थ्यवान् अथवा स्वतन्त्र थे, परीषह आदि की बाधाओं को सहन करने वाले थे गृहीतव्रत से अविचलित रहने वाले थे। इक्ष्वाकुकुल अथवा समस्त राजवंशों में आदिपुरुष थे और जिन्होंने किसी अन्य राजा के द्वारा अमुक्त होने से पतिव्रता इस समुद्र के जल रूप वस्त्र को धारण करने वाली-समुद्रान्त धनधान्य से परिपूर्ण पृथ्वी रूपी स्त्री को पतिव्रता स्त्री के समान छोड़कर दीक्षा धारण की थी।

स्व-दोष-मूलं स्व-समाधि-तेजसा, निनाय यो निर्दय-भस्मसात्क्रियाम्।
जगाद तत्त्वं जगतेऽर्थिनेऽञ्जसा, बभूव च ब्रह्म-पदा-मृतेश्वरः॥४॥

ज्वाला में झोके समाधि की, निज दोषों के करण सर्व।
जलकर भस्म हुए जो निर्मम, कर्म निषेक सभी निर्गर्व।
जिज्ञासू जीवों के जग में दिए तत्व का जो उपदेश।
हुए दयामय आप स्वयं ही, परम ब्रह्मधारी, सर्वेश॥४॥

अन्वयार्थ— जिन्होंने अपने काम क्रोध आदि समस्त दोषों के मूल कारण चार घातिया कर्मों को परमशुक्लध्यान रूपी अग्नि के द्वारा निर्दयता पूर्वक भस्मभाव को प्राप्त कराया है—समूल नष्ट कर दिया तथा जिन्होंने तत्त्वज्ञान के अभिलाषी प्राणिसमूह के लिए वास्तविक जीवादि तत्वों का स्वरूप कहा और अंत में जो मोक्षस्थान के अविनाशी अनंतसुख के स्वामी हुए।

स विश्व-चक्षुर्वृषभोऽर्चितः सतां, समग्र-विद्याऽऽत्म-वपुर्निरञ्जनः।
पुनातु चेतो मम नाभिनन्दनो, जिनोऽजित-क्षुल्लक-वादि-शासनः॥५॥

विश्व नेत्र हे वृष के कर्ता, सत्पुरुषों में पूज्य प्रधान।
विविधामय तन के धारी प्रभु परम निरंजन हे भगवान्।
क्षुद्र वादियों के 'शासन का, विजयी जिनका है सदज्ञान।
करें नाभिनन्दन वे मेरा, चित्र पुनीत और अम्ला नया॥५॥

अन्वयार्थ— जिनका केवलज्ञान रूपी चक्षु समस्त पदार्थों को विषय करने वाला है, जो इन्द्र आदि सत्पुरुषों के द्वारा पूजित है, जीवाजीवादि समस्त पदार्थों को विषय करने वाली बुद्धि ही जिनकी आत्मा का स्वरूप है, ज्ञानावरणादि कर्ममल से रहित होने के कारण जो निर्मल है, चौदहवें कुलकर नाभिराज के पुत्र हैं, कर्मरूप शत्रुओं को जीतने वाले हैं और जिन्होंने क्षुद्र वादियों के शासन को जीत लिया है अथवा जिनका शासन क्षुद्र वादियों के द्वारा नहीं जीता जा सका है, वे धर्म से सुशोभित रहने वाले अथवा धर्म को सुशोभित करने वाले वृषभनाथ भगवान् मेरे चित्त को पवित्र करें—रगादि विकारी भावों से रहित कर निर्मल बनावें।

अजितनाथ स्तवन

यस्य प्रभावात् त्रिदिवच्युतस्य, क्रीडास्वपि क्षीवमुखारविन्दः।
अजेय-शक्तिर्भुवि बन्धुवर्ग-श्चकार नामाऽजित इत्यबध्यम्॥१॥

जिन स्वामी का स्वर्ग समागत, क्रीडाओं में देख प्रभाव।
मुख पर तत्क्षण बन्धु वर्ग के, आ जाता है विस्मय भाव।
जिनकी शक्ति अजेय जानकर, अजितनाथ अन्वर्थक नाम।
बाल्यकाल में दिया भाव से, बन्धु वर्ग ने सौम्य ललामा॥१॥

अन्वयार्थ— स्वर्ग से अवतीर्ण हुए जिनके प्रभाव से उनका कुटुम्ब समूह बालक्रीडाओं में भी हर्षोन्मत्तमुख कमल से युक्त हो जाता था तथा जिनके प्रभाव से वह बन्धु वर्ग पृथ्वी पर अजेय शक्ति का धारक रहता था। इसीलिए उस बन्धुवर्ग ने जिनका अजित यह सार्थक नाम रखा था।

अद्यापि यस्याऽजितशासनस्य, सतां प्रणेतुः प्रतिमंगलार्थम्।
प्रगृह्यते नाम परं पवित्रं, स्वसिद्धि-कामेन जनेन लोके॥२॥

अपने न में जिन जीवों की, सिद्धि कामना करे निवास।
उन प्रभु का अलम्बन है शुभ, करने वाला दिव्य प्रकाश।।
मंगलमय है नाम आपका, परम पवित्र चित्तपुट पेया।
नेता हैं जो भव्यजनों के जिनका 'शासन रहा अजेय।।2।।

अन्वयार्थ— पर वादियों के द्वारा अविजित अनेकांतमत से युक्त तथा सत्पुरुषों के प्रधान नायक जिन अजितनाथ भगवान का अत्यंत पवित्र नाम आज भी अपने मनोरथों की सिद्धि के इच्छुक जन समूह के द्वारा प्रत्येक मङ्गल के लिए सादर ग्रहण किया जाता है।

यः प्रादुरासीत् प्रभु-शक्ति-भूम्ना, भव्याऽऽ शयालीन-कलंक-शान्त्यै।
महामुनिर्मुक्त-घनोपदेहो, यथाऽरविन्दाभ्युदयाय भास्वान्।।3।।

मेघ पटल से होकर जैसे, प्रकट हो रवि बिम्ब महान।
कर देता अरविन्द वृन्द को, वैभव और विकाश प्रदान।।
भव्यों के मन का कलंक जो, करने हेतू अति उद्धार।
महा 'शक्ति के धारी प्रगटे, अजितेश्वर जग में आधार।।3।।

अन्वयार्थ— ज्ञानावरणादि कर्म रूप सघ आवरण से रहित जो गणधरादि देवों में प्रधान अथवा प्रत्यक्षज्ञानी अजितनाथ भगवान् भव्यजनों के हृदय में संलग्न अज्ञान अथवा उसके कारणभूत ज्ञानावरणादि कर्म रूप कलङ्क की शांति के लिए जगत का उपकार करने में समर्थ वाणी के माहात्म्य विशेष अथवा प्रभुत्व शक्ति की प्रचुरता से उस तरह प्रकट हुए थे जिस तरह कि मेघरूप आच्छादन से मुक्त सूर्य कमलों के विकास रूप अभ्युदय के लिए प्रकट होता है।

येन प्रणीतं पृथु धर्म-तीर्थ, ज्येष्ठं जनाः प्राप्य जयन्ति दुःखम्।
गांग हृदं चन्दन-पंक-शीतं, गज-प्रवेका इव घर्म-तप्ताः।।4।।

जिन स्वामी ने किया प्ररूपित, धर्म तीर्थ अतिदिव्य ललामा।
करते जो अवगाहन उसमें, वे पाते दुख से विश्राम।।
तीक्ष्ण ताप से ज्यों निदाघ के, क्लेशित होके वन गज वृन्द।
अवगाहन 'शीतल गंगा के, जल में पाते हैं आनन्द।।4।।

अन्वयार्थ— जिन अजितनाथ भगवान् के द्वारा प्रकाशित अत्यन्त विस्तृत एवं श्रेष्ठ धर्मरूपी तीर्थ अथवा धर्म के प्रतिपादक श्रुत को पाकर भव्यजीव संसार परिभ्रमण रूप क्लेश को उस तरह जीत लेते हैं जिस तरह कि सूर्य के आतप से पीड़ित बड़े बड़े हाथी चन्दन के द्रव के समान शीतल गंगा नदी के द्रह अगाध जल को पाकर सूर्य के संताप से उत्पन्न दुःख को जीत लेते हैं।

स ब्रह्मनिष्ठः सम-मित्र-शत्रु-र्विद्या-विनिर्वान्त-कषाय दोषः।
लब्धात्मलक्ष्मीरजितोऽजितात्मा, जिन-श्रियं मे भगवान् विधत्ताम्।।5।।

आत्म निष्ठ जिन प्रभु को भाई, शत्रु मित्र है उभय समान।
ज्ञान ध्यान के द्वारा जिनने, किया कषायों का अवशान।।
आत्म सम्पदा पाने वाले, लोकजयी जिनराज महान।
स्वात्म सम्पदा विशद दिलाएँ, ऐसे अजित नाथ भगवान।।5।।

अन्वयार्थ— जिन्होंने परमागम के ज्ञान और उसमें प्रतिपादित मोक्षमार्ग के अनुष्ठान रूप विद्या के द्वारा कषाय रूपी दोषों को अथवा द्रव्यक्रोधादिरूप कषाय और भाव क्रोधादि रूप दोषों को बिल्कुल नष्ट कर दिया है, जो शुद्ध आत्मस्वरूप में स्थित हैं। जिन्हें मित्र और शत्रु समान है, जो आत्मा की अनन्त ज्ञानादिरूप लक्ष्मी को प्राप्त कर चुके हैं और जिन्होंने अपने आप को जीत लिया है अर्थात् हो इन्द्रियों के अधीन नहीं हैं, वे अंतरंग बहिरंग शत्रुओं के द्वारा अपराजित अजितनाथ भगवान मेरे लिए आर्हन्त्यलक्ष्मी-अनन्त ज्ञानादि विभूति प्रदान करें।

सम्भवनाथ

त्वं शम्भवः संभव-तर्ष-रोगैः, संतप्यमानस्य जनस्य लोके।
आसीरिहाकस्मिक एव वैद्यो, वैद्यो यथाऽनाथरुजां प्रशान्त्यै।।1।।

परम 'शांति सम्पन्न आप हो, आकस्मिक जिन वैद्य महान।
विषय तृषा के दुख जो पाते, उनके आप रहे भगवान।।
इस संसार क्षेत्र में जैसे, रोगी पीड़ित जन समुदाय।
वैद्यवरों से पा लेते हैं, रोग शांति के श्रेष्ठ उपाय।।1।।

अन्वयार्थ— हे भगवन्! आप से भव्य जीवों को सुख प्राप्त होता है इसीलिए आप 'संभव' इस सार्थक नाम को धारण करने वाले हैं। आप इस संसार में सांसारिक भोग तृष्णा रूप रोगों से अतिशय पीड़ित जन समूह के लिए उस तरह फल की अपेक्षा से रहित वैद्य हुए थे जिस तरह कि अशरण मनुष्यों के रोगों की शांति के लिए धनादि की इच्छा से रहित वैद्य होता है।

**अनित्यमत्राणमहंक्रियाभिः, प्रसक्त-मिथ्याऽध्यवसाय-दोषम्।
इदं जगज्जन्म-जराऽन्तकार्तं निरञ्जनां शान्तिमजीगमस्त्वम्॥2॥**

यह संसार विनाश शील है, यहाँ ना रक्षक है कोई मित्र।
अहंकार मय मिथ्या श्रम से, बढ़ते दोष यहाँ अपवित्र।
जन्म बुढ़ापा और मरण का, छाया रहता है आतंक।
किन्तु 'शांति का मार्ग आपने, यहाँ बताया है अकलंक।॥2॥

अन्वयार्थ— हे भगवन्! विनश्वर रक्षक रहित 'मैं' ही सब पदार्थों का कर्ता धर्ता हूँ" इस प्रकार अहंकार, ममकार की क्रियाओं से संलग्न मिथ्या अभिनिवेश रूप दोष से दूषित तथा जन्म बुढ़ापा और मृत्यु से पीड़ित इस जगत को आपने कर्म कलंडक से रहित मुक्ति रूप शांति को प्राप्त कराया है।

**शतहृदोन्मेष-चलं हि सौख्यं, तृष्णाऽऽमयाऽप्यायन-मात्र-हेतुः।
तृष्णाभिवृद्धिश्च तपत्यजस्रं, तापस्तदायासयतीत्यवादीः॥3॥**

सौख्य सभी इस जगती के हैं, चपला चमक तुल्य क्षण क्षीण।
तृष्णा रोग बढ़ाने में ही हैं इस जग के सौख्य प्रवीण।
मृगतृष्णा आताप बढ़ाती, अरु आताप बढ़ाए क्लेश।
सच्चे बोध हेतु प्रभु तुमने, दिश जगत को सदुपदेश।॥3॥

अन्वयार्थ— निश्चय से इन्द्रियजन्य सुख बिजली की कोंद के समान चञ्चल है तथा तृष्णा रूपी रोग की पुष्टि मात्र का कारण है और तृष्णा की चौमुखी वृद्धि निरन्तर ताप उत्पन्न करती है एवं वह ताप जगत को क्लेशों की परम्परा द्वारा दुखी करता है... ऐसा आपने कहा है।

**बन्धश्च मोक्षश्च तयोश्च हेतू, बद्धश्च मुक्तश्च फलं च मुक्तेः
स्याद्वादिनो नाथ तवैव युक्तं, नैकान्तदृषेस्त्वमतोऽसि शास्ता॥4॥**

अष्ट कर्म के बन्ध मोक्ष में, कारण हैं जीवों के भाव।
बद्धमुक्त होते हैं कैसे, क्या होता है मुक्ति प्रभाव।
स्याद्वाद औ अनेकान्तमय, दृष्टि आपकी रही पवित्र।
विशद विवेचन करने वाली, तत्त्वों की है जग मित्र।॥4॥

अन्वयार्थ— हे स्वामिन्! बन्ध मोक्ष बंध और मोक्ष के हेतु बद्ध आत्मा मुक्त आत्मा और मुक्ति का फल यह सब अनेकान्तमय से निरूपण करने वाले आपके ही मत में ठीक होता है एकांतदृष्टि रखने वाले बौद्ध अथवा सांख्य आदि के मत में ठीक नहीं होता इसीलिए आप ही तत्वोपदेष्टा हैं।

**शक्रोऽप्यशक्तस्तव पुण्यकीर्तेः स्तुत्यां प्रवृत्तः किमु मादृशो-ज्ञः।
तथाप भक्त्या स्तुत-पाद-पद्मो, ममार्य! देयाः शिवतातिमुच्चैः॥5॥**

हुआ प्रवृत्त सुरेन्द्र आपकी, स्तुति करने हे जिननाथ।
रहा असक्त शक्ति शाली वह, मैं क्या स्तुति करूँ अनाथ।
किन्तु भक्ति वश स्तुति करता, तव चरणों की हे जिनदेव।
शक्ति मुझे दो नाथ मिले अब, निज कल्याण मार्ग स्वमेव।॥5॥

अन्वयार्थ— गुणों अथवा गुणवानों के द्वारा सेव्य हे संभव जिनेन्द्र! पवित्र ख्याति, पवित्र वाणी अथवा पुण्यवर्धक स्तुति से युक्त आपकी स्तुति में प्रवृत्त हुआ अवधि ज्ञान और समस्त श्रुत का धारक इन्द्र भी जब असमर्थ रहा है तब मेरे जैसा अज्ञानी पुरुष कैसे समर्थ हो सकता है? यद्यपि यह बात है तो भी तीव्र अनुराग द्वारा स्तुत चरण कमलों से युक्त आप मेरे लिए उत्कृष्ट यथार्थ सुख की सन्तति को प्रदान करें।

अभिनन्दन नाथ

**गुणाऽभिनन्दादभिनन्दनो भवान् दयावधूं क्षान्ति-सखीमशिश्नयत्।
समाधि-तन्त्रस्तदुपोपपत्तये, द्वयेन नैर्ग्रन्थ्य-गुणेनऽऽचाऽयुजत्॥1॥**

दया वधू का क्षमा सखीयुत, दिया आपने आश्रय दान।
 पुनः प्रशन्न उसे करने को, त्याग आपने किया महान।
 निस्परिग्रहता दो प्रकार की, धारण हेतु समाधि संयुक्त।
 गुण अभिनन्दन के कारणों, अभिनन्दन प्रभु को उपयुक्त।॥१॥

अन्वयार्थ— हे भगवन्! अनंतज्ञानादि अन्तरंग और सकल लक्ष्मी आदि बहिरंग गुणों की वृद्धि होने से अभिनन्दन इस सार्थक नाम को धारण करने वाले आपने क्षमारूप सखी से सहित दया रूप स्त्री का आश्रय लिया था तथा धर्मध्यान और शुक्लध्यान रूप समाधि को प्रधान लक्ष्य बनाकर उसकी सिद्धि के लिए आप अंतरंग और बहिरंग के भेद से दोनों प्रकार के निष्परिग्रहता रूप गुण से युक्त हुए थे।

अचेतने तत्कृत-बन्धजेऽपि च, ममेदमित्याऽभिनिवेशिक-ग्रहात्।
 प्रभंगुरे स्थावर-निश्चयेन च, क्षतं जगत्-तत्त्वमजिग्रहद्भवान्॥२॥

नानाविधि कर्मों का होता, जड़ 'शरीर के द्वारा बन्ध।
 सुख दुख फल में मोही होकर, समझ रहा भ्रम से सम्बन्ध।
 निश्चय क्षण भंगुर को स्थिर, मान दुखी हो विश्व हो दुखी महान।
 तत्व कथन कर समझाया है, अतः आपने सम्यक ज्ञान।॥२॥

अन्वयार्थ— अचेतन शरीर में और उस अचेतन शरीर के द्वारा किये हुए कर्मबन्ध से उत्पन्न सुख दुःखादिक तथा स्त्री पुत्रादि पर पदार्थों में यह मेरा है मैं इसका स्वामी हूँ इस प्रकार के मिथ्या अभिप्राय को स्वीकार करने से अथवा मिथ्या अभिप्राय रूप पिशाच से तथा विनश्वर शरीर पर पदार्थ में स्थायित्व के निश्चय से नष्ट हुए जगत् को आपने जीवादि पदार्थों का यथार्थ स्वरूप ग्रहण कराया है—समझाया है।

क्षुदादि-दुःख-प्रतिकारतः स्थिति, न चेन्द्रियार्थ-प्रभवाऽल्प-सौख्यतः।
 ततो गुणो नास्ति च देह-देहिनो-रितीदमित्यं भगवान् व्यजिज्ञपत्॥३॥

प्रतीकार क्षुधा आदि के, यह 'शरीर ना होता पुष्ट।
 इन्द्रिय जनित अल्प सुख पाके, चेतन कञ्जी ना हो संतुष्ट।
 कर सकते है ये पदार्थ ना, इन दोनों का कुछ उपकार।

यही आपके उपदेशों का, हे अभिनन्दन गाया सार।॥३॥
 अन्वयार्थ— क्षुधा तृष्णा आदि के दुःख का प्रतिकार करने से भोजनपान ग्रहण करने से और स्पर्शनादि इन्द्रियों के विषयों से उत्पन्न अल्प सुख से शरीर और शरीरधारी आत्मा की सदास्थिति नहीं रहती इसलिए उनसे उनका कुछ उपकार नहीं है इस तरह इस जगत् को भगवान् अभिनन्दन जिनेन्द्र ने यह परमार्थ तत्व बतलाया है।

जनोऽतिलोलोऽप्यनुबन्धदोषतो, भयादकार्येष्विह न प्रवर्तते।
 इहाऽप्यमुत्राऽप्यनुबन्धदोषवित्, कथं सुखे संसजतीति चाऽब्रवीत्॥४॥

लम्पट प्राणी भी जग में, पापों से रहते भय भीता।
 इसी भीति के कारण डरते, करते हुए अकार्य अनीति।
 जिनसे दानों लोक बिगड़ते, ऐसे कार्यो का कर ज्ञान।
 कैसे फँसता है जग उनमें?, कहा आपने हे भगवान्।॥४॥

अन्वयार्थ— मनुष्य अत्यन्त आसक्त होता हुआ भी आसक्ति रूप दोष से राजा आदि के भय के कारण इस संसार में परस्त्री सेवन आदि अकरणीय कार्यो में प्रवृत्त नहीं होता है फिर इस लोक और परलोक दोनों ही जगह आसक्ति के दोष को जानने वाला मनुष्य विषय सुख में कैसे आसक्त होता है यह आश्चर्य की बात है हे अभिनन्दन जिनेन्द्र! जगत् के जीवों को आपने यह भी बतलाया है।

स चाऽनुबन्धोऽस्य जनस्य तापकृत्, तृषोऽभिवृद्धिः सुखतो न च स्थितिः।
 इति प्रभो लोक-हितं यतो मतं, ततो भवानेव गतिः सतां मतः॥५॥

विषय वांछा जग जीवों को, उपजाती संताप महान।
 तृष्णा सदा बढ़ाती जिससे, सुख को ना मिलता स्थान।
 लोक हितैषी नाथ आपका, पावन गाया 'शुभ उपदेश।
 अतः आपको संत मानते, जग उपकारी जिन तीर्थेश।॥५॥

अन्वयार्थ— वह आसक्ता और आसक्ता से उत्पन्न होने वाली उत्तरोत्तर तृष्णा की वृद्धि दोनों ही इस विषयातिसक्त मनुष्य के लिए संताप उत्पन्न करने वाली है प्राप्त हुए अल्पमात्र विषय सुख से जीव की सुख से

स्थिति नहीं होती अर्थात् अल्प सुख से जीव संतुष्ट नहीं होता इस तरह हे स्वामिन् चूँकि आपका मत लोककल्याणकारी है इसलिए आप ही विवेक शाली सत्पुरुषों के शरण माने गये हैं।

सुमतिनाथ

अन्वर्थसंज्ञः सुमतिर्मुनिस्त्वं, स्वयं मतं येन सुयुक्ति-नीतम्।
यतश्चय शेषेषु मतेषु नास्ति, सर्व-क्रिया-कारक-तत्त्व-सिद्धिः॥1॥

क्षणिक नित्य सिद्धान्तो में ना, होय क्रिया कारक संबन्ध।
अतः सिद्ध ना होय वहा पर, तत्व सिद्धि का कहीं प्रबन्ध।
क्रिया आपने दृढ़ सुयुक्तियो, से तब निश्चित निज सिद्धान्त।
नाथ आपका इसीलिए है, सुमति नाम अन्वर्थ नितान्त॥1॥

अन्वयार्थ— हे भगवन्! आप प्रत्यक्ष ज्ञानी हैं तथा सुमति इस सार्थक संज्ञा से युक्त है—उत्तम बुद्धि से सहित होने के कारण आपका 'सुमति' नाम सार्थक है क्योंकि आपने उत्तम युक्तियों से युक्त तत्व स्वयं स्वीकृत किया है और आपके मत से शेष अन्य मतों में सम्पूर्ण क्रियाओं तथा कर्ता कर्म करण आदि कारणों की तत्वसिद्धि नहीं हैं।

अनेकमेकं च तदेव तत्त्वं, भेदाऽन्वयज्ञानमिदं हि सत्यम्।
मृषोपचारोऽन्तरस्य लोपे तच्छेषलोपोऽपि ततोऽनुपाख्यम्॥2॥

तत्व एक है एक दृष्टि से, एक दृष्टि से रहे अनेक।
इस प्रकार से भेद ज्ञान में, रहता सत्य और सुविपक।
यदि कर दें उपचरित मानकर, एक दृष्टि का कोई लोप।
'शीघ्र दूसरी दृष्टि का भी, हो जाएगा 'शीघ्र विलोप'॥2॥

अन्वयार्थ— वही सुयुक्तिनीत तत्व अनेक तथा एक रूप है निश्चय से अनेक को विषय करने वाला यह भेदज्ञान और एक को विषय करने वाला यह अन्वयज्ञान यथार्थ है। इनमें से किसी एक को उपचार रूप कल्पित मानना मिथ्या है क्योंकि दो में से किसी एक का लोप अभाव होने पर उससे शेष अन्य धर्म का भी अभाव हो जाता है और दोनों का अभाव हो जाने से तत्व निःस्वभाव होने से अवाच्य हो जाता है।

सतः कथंचित् तदसत्त्व-शक्तिः खे नास्ति पुष्पं तरुषु प्रसिद्धम्।
सर्व-स्वभाव-च्युतमप्रमाणं, स्व-वाग्-विरुद्धं तव दृष्टितोऽन्यत्॥3॥

किसी दृष्टि सत् पदार्थ में, भी रहता है धर्म असत्वा।
फूल वृक्ष में लगते लेकिन, नभ में उनका नहीं है सत्वा।
सत्यासत्य ना माने कोई, तो होगा वह सूय प्रमाण।
स्व नयनों से बाधित होगा, नाथ आपका जहाँ ना ज्ञान॥3॥

अन्वयार्थ— स्वद्रव्यक्षेत्र काल भाव की अपेक्षा सदरूप जीवादि पदार्थ के किसी अपेक्षा पर द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा असद् रूपता है जैसे कि फूल वृक्षों पर प्रसिद्ध है और आकाश में नहीं है। यदि तत्व को सत्व और असत्व दोनों प्रकार के स्वभाव से च्युत माना जावेगा तो वह प्रमाण रहित हो जावेगा। हे भगवन्! तुम्हारे दर्शन के सिवाय अन्य सब दर्शन स्ववाणी से विरुद्ध है। अर्थात् स्ववचनबाधित है।

न सर्वथा नित्यमुदेत्यपैति न च क्रिया-कारकमत्र युक्तम्।
नैवाऽसतो जन्म सतो न नाशो, दीपस्तमः पुद्गलभावतोऽस्ति॥4॥

तत्व सर्वथा नित्य कहें तो, व्यय उत्पाद ना होगा सिद्ध।
क्रिया और कारक ना होंगे, हो जाएगा कथन विरुद्ध।
असद् तत्व उत्पाद ना होता, सत् का होता नहीं विनाश।
परिणत होते अन्धकार में, पुद्गल जो थे पूर्ण प्रकाश॥4॥

अन्वयार्थ— सब प्रकार से नित्य वस्तु न उत्पन्न होती है न नष्ट ही होती है। और न इस मान्यता में क्रियाकारक भाव ही संगत होता है। क्योंकि असत् अविद्यमान पदार्थ का जन्म नहीं होता और सत् विद्यमान पदार्थ का नाश नहीं होता। यदि कहा जाय कि जलता हुआ दीपक बुझा देने पर उसमें क्या शेष रह जाता है, यहां तो सत् का नाश मानना ही पड़ेगा तो उसका उत्तर यह है कि दीपक अंधकार रूप पुद्गल द्रव्य के रूप में विद्यमान रहता है।

विधिर्निषेधश्च कथञ्चिद्विष्टौ, विवक्षया मुख्य-गुण-व्यवस्था।
इति प्रणीतिः सुमतेस्तवेयं, मति-प्रवेकः स्तुवतोऽस्तु नाथ॥5॥

जिन 'शासन में दृष्टि भेद से, कहे गये है विधि निषेध।
इच्छा पर निर्भर करता की, मुख्य गौण या पतनोत्सेध।।
इस प्रकार हे सुमति नाथ है, विशद आपकी तात्त्विक नीति।
नाथ! आपके स्तोता की बुद्धि, प्रखर हो मिटे अनीति।।5।।

अन्वयार्थ— अस्तित्व और नास्तित्व दोनों ही किसी अपेक्षा से इष्ट है।
वक्ता की इच्छा से उनमें मुख्य और गौण की व्यवस्था होती है। इस
तरह यह तत्व निरूपण की पद्धति आप सुमतिनाथ स्वामी की है। हे
स्वामिन्! आपकी स्तुति करते हुए मुझे मति का उत्कर्ष प्राप्त होवे।

पद्मप्रभु

पद्मप्रभः पद्म-पलाश-लेश्यः पद्मालयाऽऽलिंगतचारुमर्तिः।
बभौ भवान् भव्य-पयोरुहाणां, पद्माऽऽकराणामिव पद्मबन्धुः।।1।।

पद्मप्रभु हैं जिनके तनकी, पद्म सम सुन्दर कान्ति।
लेती है पद्म अन्तर में, जिन पद्माकित ने विश्रान्ति।।
दिनकर भर देता है जैसे, पद्मसरो में विमल विकाश।
उसी तरह भर देते हैं वे, भविकमलों में देव प्रकाश।।1।।

अन्वयार्थ— जिनके शरीर का वर्ण कमल पत्र के समान लाल रंग का
था तथा जिनकी आत्मस्वरूप निर्मलमूर्ति अनन्तज्ञानादिरूप अन्तरंग लक्ष्मी
से एवं जिनकी समस्त उत्तम लक्षणों से सहित शरीर रूप मूर्ति
निःस्वेदत्व आदि पसीना के अभाव आदि रूप बाह्य लक्ष्मी से आलिङ्गित
थी ऐसे पद्मप्रभ जिनेन्द्र थे। हे जिनेन्द्र! आप भव्य जीव रूप कमलों के
हितोपदेश रूप विकास के लिए उस तरह सुशोभित हुए थे जिस तरह
कि कमलसमूह के विकास के लिए सूर्य सुशोभित होता है।

बभार पद्मां च सरस्वतीं च, भवान् पुरस्तात् प्रतिमुक्तिलक्ष्म्याः।
सरस्वतीमेव समग्र-शोभां, सर्वज्ञ-लक्ष्मी-ज्वलितां विमुक्तः।।2।।

पूर्वकाल में मोक्ष प्राप्ति के, पाई लक्ष्मी और गिरा।
त्यागे ना होकर विमुक्त जो, और बढ़ाया उसे जरा।।
कर समग्र शोभित वाणी को, लक्ष्मी को सर्वज्ञ रमा।

गिरा रमा के नाथ आप हो, और ना कोई आप समा।।2।।

अन्वयार्थ— हे पद्मप्रभ जिनेन्द्र! आपने मोक्षरूपी लक्ष्मी के पूर्व अर्थात्
अरहन्त अवस्था में अनन्तज्ञानादि रूप लक्ष्मी और दिव्यवाणी-दिव्यध्वनि
को धारण किया था अथवा समस्त पदार्थों के प्रति पादन रूप विभूति
और समवशरणआदि रूप समस्त शोभा से युक्त दिव्य वाणी को ही
धारण किया था पीछे समस्त कर्मफल से रहित होकर देदीप्यमान-सदा
उपयोग रूप सर्वज्ञता रूप लक्ष्मी को धारण किया था।

शरीर-रश्मि-प्रसरः प्रभोस्ते, बालाऽर्क-रश्मिच्छविराऽऽलिलेप।
नराऽमराऽऽकीर्ण-सभां प्रभावच् छैलस्य पद्माऽऽभमणेः स्व-सानुमा।।3।।

पद्मराग मणि गिरिका जैसे, सुन्दर दिखता लाल प्रकाश।
कर देता अनुरक्त प्रान्त को, करके अन्धकार का नाश।।
नाथ वाल रवि किरणों जैसी, रही आपके तन की कांति।
नर सुर पूर्ण सभा में भरती, निज प्रकाश औ अनुपम शांति।।3।।

अन्वयार्थ— प्रातःकालीन सूर्य की किरणों के समान कान्तिवाले आप
स्वामी के शरीर सम्बन्धी किरणों के समूह ने मनुष्य और देवों से व्याप्त
समवशरण सभा को उस तरह आलिप्त कर रखा था जिस तरह कि
पद्मरागमणि के पर्वत की प्रभा अपने पार्श्वभाग को आलिप्त कर रखती है।

नभस्तलं पल्लवयन्निव त्वं, सहस्रपत्राऽम्बुज-गर्भचारैः।
पादाऽम्बुजैः पातित मार-दर्पो, भूमौ प्रजानां विजहर्थ भूत्यै।।4।।

ज्यों सहस्रदल कमलों के भी, ऊपर करें सुपद संचार।
नाथ गगन तल शोभित करते, करें काम के मद को क्षार।।
इस भूतल के देश देश में, किया आपने नाथ विहार।
जन-जन को सुख शांति वैभव, अनुपम किया देव! उपकार।।4।।

अन्वयार्थ— हे जिनेन्द्र! कामदेव के गर्व को नष्ट करने वाले आपने
सहस्रदल कमलों के मध्य में चलने वाले अपने चरण कमलों के द्वारा
आकाश तल को पल्लवों से युक्त जैसा करते हुए पृथ्वी पर स्थित
प्रजाजनों की विभूति के लिए विहार किया था।

गुणाऽम्बुधेर्विप्रुषमप्यजस्रं, नाऽऽखण्डलः स्तोतुमलं तवर्षेः।
प्रागेव मादृक् किमुताऽति भक्ति र्मा बालमालाऽऽपयतीदमित्थम्॥५॥

गुण सागर के बिन्दू का भी, स्तवन ना कर सके सुरेश।
किया निरन्तर पूर्व काल में, जिसने भाई प्रयत्न विशेष।।
हे ऋषि पुंगव मेरे जैसा, क्या बतलावे इसमें 'शक्ति।
प्रेरित करती है मुझको, हे देव! आपकी अतिशय भक्ति॥५॥

अन्वयार्थ— हे भगवन्! समस्त ऋद्धियों के निधान स्वरूप आपके गुण रूप सागर की एक बूंद की भी निरन्तर स्तुति करने के लिए जब इन्द्र पहले ही समर्थ नहीं हो सका है तब मेरे जैसा असमर्थ मनुष्य कैसे समर्थ हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता। यह तीव्र भक्ति ही मुझ अज्ञानी से इस तरह इस स्तवन को कहला रही है।

सुपार्श्वनाथ

अजंगमं जंगम-नेय-यन्त्रं, यथा तथा जीव-धृतं शरीरम्।
बीभत्सु पूति क्षयि तापकं च, स्नेहो वृथाऽत्रेति हितं त्वमाख्यः॥१॥

निज स्वरूप में रमण कहा है सत् पुरुषों का सच्चा स्वार्थ।
क्षण भंगुर इन्द्रिय भोगों में, नहीं स्वार्थ हो सके यथार्थ।।
विषयों से तृष्णा की वृद्धी, होता नहीं ताप का नाश।
प्रकट किया है हे सुपार्श्व जिन, तुमने निज में दिव्य प्रकाश॥१॥

अन्वयार्थ— जो अविनाशी स्वरूपलीनता है यही जीवात्माओं का निजी प्रयोजन है क्षणभंगुर भोग निजी प्रयोजन नहीं हैं। उत्तरोत्तर भोगाकाङ्क्षा की वृद्धि से ताप की शांति नहीं होती है इस प्रकार यह विवेक विशिष्ट ज्ञानी सुपार्श्वनाथ ने कहा है।

अलंघ्यशक्तिर्भवितव्यतेयं, हेतु-द्वयाऽऽविष्कृत-कार्य-लिंगा।
अनीश्वरो जन्तुरहंक्रियऽऽर्तः संहत्य कार्येष्विति साध्ववादीः॥२॥

परिचालक के द्वारा जैसे, चलते है जड़ यन्त्र विशेष।
वैसे ही चेतन के द्वारा, यह शरीर सब चलें अशेष।।

दुर्गन्धित है बहुत घृणासपद, तापक बतलाया क्षय रूप।
है स्नेह व्यर्थ इस तन से, कहा आपने हे शिव भूषा॥२॥

अन्वयार्थ— जिस प्रकार गतिशील मनुष्य के द्वारा चलाया जाने वाला यन्त्र स्वयं गतिरहित होता है उसी तरह जीव के द्वारा धारण किया हुआ शरीर स्वयं गति रहित है, जड़ है। साथ ही यह शरीर घृणित दुर्गन्ध से युक्त विनश्वर और संताप उत्पन्न करने वाला है इसलिए इस शरीर में अनुराग करना व्यर्थ है। यह हितकारक वचन हे सुपार्श्व जिन! आपने कहा है।

बिभेति मृत्योर्न ततोऽस्ति मोक्षो, नित्यं शिवं वाञ्छति नाऽस्य लाभः।
तथाऽपि बालो भय-काम-वश्यो, वृथा स्वयं तप्यत इत्यवादीः॥३॥

अन्तर्बाह्य हेतुओं द्वारा कर्मों का होता है बन्धा।
जो अलंघ्य फल दिए कभी भी, नहीं छोड़ता है सम्बन्ध।।
विकल जीव मद से मतवाला, होके करे कार्य असमर्थ।
करके उपसंहार आपने, तत्त्व बताए है अव्यर्थ॥३॥

अन्वयार्थ— शुभ अशुभ कर्म अथवा बाह्य और आभ्यन्तर दोनों कारणों से उत्पन्न होने वाला कार्य ही जिसका लिंग-ज्ञापक है ऐसी यह भवितव्यता-होनहार अलङ्घ्यशक्ति है किसी भी तरह टाली नहीं जा सकती तथा भवितव्यता की अपेक्षा नहीं रखने वाला अहंकार से पीड़ित हुआ संसारी प्राणी अनेक सहकारी कारणों से मिलकर भी सुख दःखादि कार्यों में असमर्थ है, हे सुपार्श्व जिनेन्द्र! आपने यह ठीक ही कहा है।

सर्वस्य तत्त्वस्य भवान् प्रमाता, मातेव बालस्य हिताऽनुशास्ता।
गुणाऽवलोकस्य जनस्य नेता, मयाऽपि भक्त्या परिणूयसेऽद्य॥४॥

रहते हैं भयभीत अमंगल, से ना मिटता है भव रोग।
मिलता नहीं चाह करके भी, विशद पूर्ण आनन्दोप भोग।।
रहे भयातुर अज्ञानी यह, नहीं चाह का करता त्याग।
व्यर्थ रहे सन्तप्त जीव यह, कहा आपने हे गतराग॥४॥

अन्वयार्थ— यह जीव मरण से डरता है परन्तु उससे छुटकारा नहीं है

सदा कल्याण अथवा निर्वाण की इच्छा करता है परन्तु इसकी प्राप्ति नहीं होती फिर भी भय और काम के वशीभूत हुआ अज्ञानी प्राणी स्वयं ही निष्प्रयोजन दुःखी होता है हे भगवन् यह आपने कहा है।

चन्द्रप्रभं चन्द्र-मरीचि-गौरं, चन्द्र द्वितीयं जगतीव कान्तम्।
वन्देऽभिवन्द्यं महतामृषीन्द्रं, जिनं जित-स्वान्त-कषाय-बन्धम्॥५॥

ज्ञाता और प्रमाता जग में, हो निःशेष तत्व के आप देव।
शिशु को माँ समहित उपदेशक, अनुशासन के आप सदैव।
भव्य जनों के गुण अनुरागी, हे जगनायक नेता आप।
नमन भक्ति से चरण आपके, कर्म शत्रु के जेता आप॥५॥

अन्वयार्थ— आप समस्त जीवादि पदार्थों के संशयादि रहित ज्ञाता हैं, सन्तान को माता के समान अज्ञानी जनों को हित का उपदेश देने वाले हैं और सम्यग्दर्शनादि गुणों का अन्वेषण करनेवाले भव्यसमूह के सन्मार्ग दर्शक हैं अतः आज मुझ समन्तभद्र के द्वारा भी हे सुपार्श्व जिनेन्द्र! आप भक्तिपूर्वक मन वचन काय से स्तुत हो रहे हैं—मैं मनसा वाचा कर्मणा आपकी स्तुति कर रहा हूँ।

चन्द्रप्रभु

यस्यांग-लक्ष्मी-परिवेष-भिन्नं तमस्तमोऽरेरिव रश्मिभिन्नम्।
ननाश बाह्यं बहु मानसं च, ध्यान-प्रदीपाऽतिशयेन भिन्नम्॥१॥

गौर वर्ण है चन्द्र किरण सम, कांति आपकी चन्द्र समान।
मुक्त कषायों के बन्धन से, इन्द्रिय जेता हे भगवान्।
वन्दनीक तुम महाजनों से, ऋषि पुंगव तुम हे जिनराज।
चन्द्र प्रभू तुम चरण कलल में, भक्त वन्दना करते आज॥१॥

अन्वयार्थ— मैं चन्द्रमा की किरणों के समान गौर वर्ण संसार में दूसरे चन्द्रमा के समान सुंदर, इन्द्र आदि बड़े बड़े जनों के वंदनीय गणधरादि ऋषियों के स्वामी कर्म रूप शत्रुओं को जीतने वाले और अपने विकारी भाव स्वरूप कषाय के बंधन को जीतने वाले चन्द्रमा के समान कांति के धारक चन्द्रप्रभ नामक अष्टम तीर्थकर की वंदना करता हूँ।

स्व-पक्ष-सौस्थित्य-मदाऽवलिप्ता, वाक्सिंह-नादैर्विमदा बभूवुः।
प्रवादिनो यस्य मदार्द्रगण्डा, गजा यथा केसरिणो निनादैः॥२॥

अंग कांति मण्डल से जिनके, बाह्य सघनतम हुआ विनाश।
रवि की किरणों से होता ज्यों, रात्रि का कालातम नाश।
नव प्रकाश से ज्यों प्रदीप के, होवे ध्वान्त विमुक्त निशान्त।
अतिशय पूर्ण ध्यान के द्वारा, त्यों बिगलित हो अन्तर्ध्वान्त॥२॥

अन्वयार्थ— जिनके शरीर संबंधी दिव्य प्रभा मण्डल से विदारित बहुत सारा बाह्य अंधकार और शुक्लध्यान रूपी श्रेष्ठ दीपक के अतिशय से विदारित बहुत सारा मानसिक अज्ञानान्धकार सूर्य की किरणों से विदारित अन्धकार के समान नष्ट हो गया था।

यः सर्वलोके परमेष्ठितायाः, पदं बभूवाऽद्भुत-कर्मतेजाः।
अनन्त-धामाऽक्षर-विश्वचक्षुः, समन्तदुःख-क्षय-शासनश्च॥३॥

गण्डस्थल मद से विलिप्त है, ऐसे उद्धत वन्य गजेन्द्र।
उच्च गर्जना से करता है, जिनको निर्मद महा मृगेन्द्र॥
इस प्रकार निज पक्ष प्रबलता, मद से जिनका बढ़ प्रवाद।
शीघ्र नष्ट हो जाता सुनकर, जिन वाणी का सुनकर वाद॥३॥

अन्वयार्थ— जिस प्रकार सिंह की गर्जनाओं से मद से गीले मण्डस्थलों के धारक हाथी मद से रहित हो जाते हैं उसी प्रकार जिनके वचन रूप सिंहनादों के द्वारा अपने मत-पक्ष की सुस्थिति के घमण्ड से गर्वीले प्रवादी जन गर्व रहित हो जाते थे।

स चन्द्रमा भव्य-कुमुद्वतीनां, विपन्न-दोषाऽभ्र-कलंक-लेपः।
व्याकोश-वाङ्-न्याय-मयूख-मालः, पूयात् पवित्रो भगवान् मनो मे॥४॥

परम पुरुषता के पदधारी, इस जग में हो हैं आसीन।
तेज विश्व में कर्म योग का, विस्मय कारी रहा नवीन॥
विश्व यक्ष अविनाशी हे जिन, तुम अनन्त धामी स्वमेव।
दुःख क्षीण हो जाते जग के, तम शासन में हे जिनदेव॥४॥

अन्वयार्थ— जो समस्त संसार में परमाप्तपना के स्थान थे, तीव्रतपश्चरण

रूप कार्य से जिनका तेज अद्भुत अचिन्त्य था अथवा समस्त प्राणी समूह को प्रतिबोधित करने रूप कार्य में जिनका केवल ज्ञान रूपतेज आश्चर्य कारक था, अनंत केवल ज्ञान ही जिनका लोकालोक को प्रकाशित करने वाला अविनाशी चक्षु था और जिनका शासन चतुर्गति के दुःखों का क्षय करने वाला था।

एकान्तदृष्टि-प्रतिषेधि तत्त्वं, प्रमाण-सिद्धं तदतत्-स्वभावम्।
त्वया प्रणीतं सुविधे! स्वधाम्ना, नैतत्समालीढ-पदं त्वदन्यैः॥5॥

हृदय कुमुदिनियो का होता है, शशिसम जिनसे भव्य विकाश।
मेघ निशा लक्षण से दूषित, नहीं है जिनका शुभ्र प्रकाश।
अनेकान्त मय दिव्य देशना, का है किरण बितान महान।
विशद चित्त पावन पवित्र अब, करदो चन्द्रनाथ भगवान्॥5॥

अन्वयार्थ— जो भव्यजीव रूप कुमुदिनियों को विकसित करने के लिए चन्द्रमा है, जिनका रागादि दोष रूप मेघकलङ्क का आवरण नष्ट हो गया है, जो अत्यन्त स्पष्ट वचनों के न्यायरूप किरणों की माला से युक्त हैं तथा कर्ममल से रहित होने के कारण जो अत्यन्त विशुद्ध हैं वे चन्द्रप्रभ भगवान् मेरे मन को पवित्र करें।

पुष्पदन्त जी

तदेव च स्यान् तदेव च स्यात्, तथाप्रतीतेस्तव तत्कथञ्चित्।
नात्यन्तमन्यत्वमनन्यता च, विधेर्निषेधस्य च शून्य-दोषात्॥1॥

किसी रूप है तत्त्व कथञ्चित्, और कथञ्चित् अन्य स्वरूप।
दृष्टि नहीं एकान्त रूप शुभ, स्याद्वाद है दृष्टि अनूप।
बात आपने यही प्रमाणिक, कही ज्ञान से हे सुविधीश।
समझ ना पाए श्रेष्ठ कथन ये, नाथ! अन्य जग के वागी॥1॥

अन्वयार्थ— हे सुविधिनाथ भगवान्! आपके द्वारा अपने ज्ञानरूप तेज से प्रतिपादित जीवादि पदार्थ एकान्त दर्शन का निषेध करने वाला है, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सिद्ध है तथा तत् और अतत् स्वभाव को लिए है अर्थात् विधि निषेध रूप है। हे भगवन् यह तत्व आपसे भिन्न सुगत

आदि के द्वारा अनुभूत स्थान वाला नहीं है सुगतादि के द्वारा ऐसातत्व प्रतिपारित नहीं हो सका है।

नित्यं तदेवेदमिति प्रतीते-र्न नित्यमन्यत्-प्रतिपत्ति-सिद्धेः।
न तद्विरुद्धं बहिरन्तरंग-, निमित्त-नैमित्तिक-योगतस्ते॥2॥

जो पदार्थ है निज स्वभाव के, दृष्टि कोण अस्ति स्वरूप।
वही प्रमाणित पर स्वभाव से, दृष्टि कोण से नास्ति स्वरूप।
विधि निषेध यह वस्तु तत्व में, नहीं अन्य हैं नहीं अनन्या
शून्य होयगा सब कुछ ही यदि, माने कोई एकान्तिक जन्य॥2॥

अन्वयार्थ— हे सुविधि नाथ जिनेंद्र आपका वह तत्व किसी अपेक्षा से तद्रूप ही है और किसी अपेक्षा से तद्रूप नहीं है क्योंकि उस प्रकार की प्रतीति होती है। विधि और निषेध में सर्वथा न भिन्नता है और न अभिन्नता है क्योंकि ऐसा मानने से शून्यता का दोष आता है।

अनेकमेकं च पदस्य वाच्यं, वृक्षा इति प्रत्ययवत् प्रकृत्या।
आकाङ्क्षिणः स्यादिति वै निपातो, गुणाऽन-पेक्षे नियमेऽपवादः॥3॥

यह है वही वस्तु ऐसा जो, नित्य बताता है सदज्ञान।
“रहा नहीं वह” यह प्रतीत का, तत्त्व अनित्य बताए मान।
है विरोध असमें ना क्योंकि, मिलते अन्तर्बाह्य निमित्त।
उस पदार्थ को ही परिवर्तित, मान लिया करता है चित्त॥3॥

अन्वयार्थ— हे भगवन्! यह वही है इस प्रकार प्रतीति होने से तत्व है औ यह अन्य है इस प्रकार प्रतीति होने से नित्य नहीं है तथा आपके मत में बहिरंग अंतरंग कारण और कार्य के योग से वह नित्यानित्यात्म तत्व विरुद्ध भी नहीं हैं।

गुण-प्रधानार्थमिदं हि वाक्यं, जिनस्य ते तद् द्विषतामपथ्यम्।
ततोऽभिवन्द्यं जगदीश्वराणां, ममापि साधोस्तव पादपद्मम्॥4॥

वृक्ष कथन से हो जाता है, जैसे वृक्ष वस्तु का ज्ञान।
वैसे एकानेक कथन से हो जाता है, जैसे वृक्ष वस्तु का ज्ञान।
वैसे एकानेक कथन से, एकानेक की हो पहिचान॥

होय विवक्षा द्वारा किन्तू, किसी वस्तु का मुख्य विचार।
गौड़ दृष्टि भी होय साथ ही, हो ना उपेक्षित किसी प्रकार।।4॥

अन्वयार्थ— हे भगवन् सुबन्तनिऽन्त रूपशब्द का अभिधेय-प्रतिपाद्य विषय स्वभाव से ही वृक्ष इस ज्ञान की तरह अनेक और एक दोनों रूप होता है। विरोधी धर्म के प्रति पादन की इच्छा रखने वाले पुरुष के कथंचित् अर्थ का प्रतिपादक स्यात् यह शब्द गौण अर्थ की अपेक्षा न रखने वाले सर्वथा एकान्त रूप कथन में निश्चय से बाधक है।

न शीतलाश्चन्दनचन्द्ररश्मयो, न गांगमम्भो न च हारयष्टयः।
यथा मुनेस्तेऽनघवाक्यरश्मयः, शमाम्बुगर्भाः शिशिरा विपश्चिताम्।।5॥

गौड़ प्रधान अर्थ युत पावन, नाथ आपका कथन यथार्था
रहे विरोधी वादि जनों के, कथन में जो आएँ पदार्था।
चन्दन करते इसीलिए इस, जगती के ऐश्वार्याधीश।
नाथ आपके चरण कमल में, हम भी झुका रहे हैं शीश।।5॥

अन्वयार्थ— हे भगवन्! कर्म रूप शत्रुओं को जीतने वाला आपका यह जो गौण और प्रधान अर्थ से युक्त वाक्य है वह निश्चय से द्वेष रखने वाले सर्वथा एकान्तवादियों के लिए अनिष्ट है। इसलिए समस्त कर्मों का क्षय करने के लिए प्रयत्नशील आपके चरणकमल तीनों जगत् के स्वामी इन्द्र, चक्रवर्ती तथा धरणेन्द्र के और मुझ समन्तभद्र के भी वंदनीय हैं।

शीतलनाथ

सुखाऽभिलाषाऽनल-दाह-मूर्च्छितं, मनो निजं ज्ञानमयाऽमृताम्बुभिः।
व्यदिध्यपस्त्वं विष-दाह-मोहितं, यथा भिषग्मन्त्र-गुणैः स्व-विग्रहम्।।1॥

नाथ! आपका वीतरागमय, रसपूरित सम वचन प्रसाद।
भवि जीवों को 'शांति प्रदायक, और मिटाए खेद विषाद।।
शांति ना देते वैसी, चंदन चन्द्र किरण गंगा का नीरा।
सब अशक्त हैं हे शीतल जिन!, मुक्तमाला मलय समीर।।1॥

अन्वयार्थ— हे भगवन्! चराचर को प्रत्यक्ष जानने वाले आप शीतल जिनेन्द्र की शांतिरूप जल से मिश्रित निर्दोष वचन रूप किरणें हेयोपादेय

तत्व को जानने वाले विद्वानों के लिए जिस प्रकार शीतल हैं संसार ताप को नष्ट कर शांति पहुँचाने वाली हैं उस प्रकार चन्दन और चन्द्रमा की किरणें शीतल नहीं हैं गंगा नदी का जल शीतल नहीं है और मोतियों की मालाएं शीतल नहीं हैं।

स्व-जीविते काम-सुखे च तृष्णया, दिवा श्रमाऽऽर्ता निशि शेरते प्रजाः।
त्वमार्य! नक्तं-दिवमप्रमत्तवा-नजागरेवाऽऽत्म-विशुद्ध-वर्त्मनि।।2॥

सांसारिक सुख की आकांक्षा, की चिन्गारी से मन क्लान्ता,
आत्म ज्ञान अमृत के द्वारा, किया आपने उसको 'शान्त।।
विष की ज्वाला से जलता हो, जिस प्रकार से आत्म 'शरीर।
कुशल वैद्य निर्विषकर देता, उसे डालकर मंत्रित नीरा।।2॥

अन्वयार्थ— जिस प्रकार विष रूपी दाह से मूर्च्छित अपने शरीर को वैद्य मन्त्र के गुणों के द्वारा शान्त करता है उसी प्रकार हे भगवन्! आपने वैषयिक सुखों की अभिलाषा रूप अग्नि की दाहसे मूर्च्छित अपने मन को ज्ञानामृत रूप जल के द्वारा शांत किया था।

अपत्य-वित्तोत्तर-लोक-तृष्णया, तपस्विनः केचन कर्म कुर्वते।
भवान् पुनर्जन्म-जरा-जिहासया, त्रयीं प्रवृत्तिं समधीरवारुणत्।।3॥

उदर भरण या इन्द्रिय सुख के, साधन में तृष्णातुर जीवा
रात और दिन सोकर खोते, हो जाते हैं श्रान्त अतीवा।।
शुद्धांतम के शुद्ध मार्ग में, नाथ! आप रहते हो लीना।
अहोरात्रि दोनों में जागृत, निस्प्रमाद होकर स्वाधीन।।3॥

अन्वयार्थ— लौकिक जन अपने जीवन और स्त्री आदि की अभिलाषा से उत्पन्न काम सुख की तृष्णा से दिन में सेवा कृषि आदि के श्रम से दुखी रहते हैं और रात्रि में सो जाते हैं परन्तु हे पूज्य शीतल जिनेन्द्र! आप रातदिन प्रमादरहित हो आत्मा को अत्यंत शुद्ध करनेवाले सम्यग्दर्शनादि रूपमार्ग में जागते ही रहे हैं।

त्वमुत्तम-ज्योतिरजः क्व निर्वृतः क्व ते परे बुद्धि-लवोद्धव-क्षताः।
ततः स्व निःश्रेयस-भावनापरै-र्बुध-प्रवेकैर्जिन-शीतलेड्यसे।।4॥

द्रव्य पुत्र पर लोकाकांक्षी, है इस जग में सारे जीव।
क्रिया काण्ड अज्ञानी होकर, जप तप आदिक करें अतीव॥
नाथ आपने लक्ष्य बनाया, करना जन्म जरा का नाश।
द्रव्य पुत्र पर लोकाकांक्षा, की भी छोड़ चुके हो आश॥4॥

अन्वयार्थ— कितने ही अग्नि होतृ आदि, दयनीय प्राणी अथवा व्रती जन सन्तान, धन तथा उत्तरलोक-परलोक या उत्कृष्टलोक की तृष्णा से अग्निहोम आदि कार्य करते हैं किंतु आपने सम बुद्धि होकर जन्म और जरा को छोड़ने की इच्छा से मन वचन काय की प्रवृत्ति को रोका है अथवा सम्यग्दर्शन सम्यक्ज्ञान और सम्यक् चारित्र्य रूप भेद रत्नत्रय को दूरकर शुद्ध आत्म स्वरूप की लीनता रूप अभेद रत्नत्रय को अङ्गीकृत किया है।

श्रेयान् जिनः श्रेयसि वर्त्मनीमाः, श्रेयः प्रजाः शासदजेयवाक्यः।
भवांश्चकासे भुवनत्रयेऽस्मिन्-नेको यथा वीतघनो विवस्वान्-॥5॥

आत्म गुणों का क्षुद्र बुद्धि से, उद्धत होकर करें विनाश।
वे अज्ञानी कहाँ औ स्वामी, कहाँ आपका विमल प्रकाश॥
जन्म जरा मृत्यु से विरहित, हे निर्वाण धाम के ईश।
शिव शाधक विद्वानों द्वारा, पूज्य आप हो हे जगदीश॥5॥

अन्वयार्थ— हे शीतल जिनेन्द्र! केवलज्ञान रूप उत्कृष्ट ज्योति से सहित पुनर्जन्म से रहित और सुखी भूत आप कहाँ और ज्ञान के लेशमात्र से उत्पन्न गर्व से नष्ट वे हरिहर हिरण्यगर्भ आदि अन्य देवता कहाँ? दोनों में महान् अंतर है इसीलिए आत्मकल्याण की भावना में तत्पर श्रेष्ठ विद्वानों-गणधरादिक श्रेष्ठ ज्ञानियों के द्वारा आप स्तुत हो रहे हैं—आपकी स्तुति की जा रही है।

श्रेयांसनाथ

विधिर्विषयक-प्रतिषेधरूपः प्रमाणमत्राऽन्यतरत्प्रधानम्।
गुणोऽपरो मुख्य-नियामहेतु-नयः स दृष्टान्तसमर्थनस्ते॥1॥

मुक्ती पथ के पथिक जनों को, दिया आपने सदुपदेश।
निर्वाधित हैं वचन आपके, जग में हे श्रेयांस!जिनेश॥
पथिक गमन करते प्रकाश में, मेघ रहित रवि का हो खासा
तीन लोक में नाथ आपका, त्यों ही फैला हुआ प्रकाश॥1॥

अन्वयार्थ— अवाधित वचनों से युक्त हे श्रेयो जिन! इन संसारी जनों को कल्याणकारी मोक्षमार्ग में हित का उपदेश देते हुए आप इन तीनों लोकों में अकेले ही मेघों के आवरण से रहित सूर्य के समान प्रकाशमान हुए हैं।

विवक्षितो मुख्य इतीष्यतेऽन्यो, गुणोऽविवक्षो न निरात्मकस्ते।
तथाऽरिमित्रानुभयादि-शक्तिः द्वयाऽवधिः कार्यकरं हि वस्तु॥2॥

विधि निषेध धर्मात्म वस्तु को, जाने सो है ज्ञान प्रमाण।
सर्वदेश यह रहा, नयों के, द्वारा होता भेद विधान॥
विधि निषेध मे मुख्य गौड़ता, का नय से हो नियम विचार।
पुनः समर्थन दृष्टान्तों से, रहा देव कथनी का सार॥2॥

अन्वयार्थ— हे श्रेयोजिन! आपके मत में जिसमें कथंचित् पर चतुष्टय की अपेक्षा नास्तित्व रूप भी तादात्म्यसम्बन्ध से सम्बद्ध है ऐसा स्वचतुष्टय की अपेक्षा अस्तित्व प्रमाण का विषय है। इन विधि और प्रतिषेध में एक प्रधान है और दूसरा अप्रधान है। यहां मुख्य के नियम का जो हेतु है वह नय है तथा वह नय दृष्टान्त का समर्थन करने वाला है।

दृष्टान्त-सिद्धावुभयोर्विवादे, साध्यं प्रसिद्ध्येन्न तु तादृगस्ति।
यत्सर्वथैकान्त-नियामिदृष्टं, त्वदीय-दृष्टिर्विभवत्यशेषे॥3॥

धर्म विवक्षा मुख्य कहाए, अविवक्षित कहलाए गौण।
रहित विश्व में उभय धर्म से, है पदार्थ बतलाओ कौन॥
मित्र किसी का एक व्यक्ति है, वही किसी का शत्रु विशेष।
शत्रुमित्र ना कोई किसी का, दोनो रूप पदार्थ अशेष॥3॥

अन्वयार्थ— हे भगवन्! आपके मत में विवक्षित पदार्थ मुख्य कहलाता है और दूसरा— अविवक्षित पदार्थ गौण कहलाता है। जो पदार्थ अविवक्षित

है वह अभावरूप नहीं है मुख्य और गौण की इस विधि से पदार्थ शत्रु मित्र और अनुभय आदि शक्तियों से युक्त होती है निश्चय से समस्त पदार्थों की भाव अभाव अथवा द्रव्य और पर्याय रूप मर्यादा है और उसी मर्यादा का आश्रयकर वस्तु कार्यकारी होती है।

एकान्त-दृष्टि-प्रतिषेध-सिद्धि-न्यायेषुभिर्मोहरिपुं निरस्य।
असि स्म कैवल्य-विभूति-सम्राट्, ततस्त्वमर्हन्नसि मे स्तवाऽर्हः॥४॥

जग व्यापी सिद्धान्त आपका, अनेकान्तमय प्रभो! अबाध्या
विशद सिद्ध दृष्टान्त देखकर, सिद्ध 'शीघ्र होते है साध्य।।
वादी प्रतिवादी दोनों को, जिसके बिना ना हो सन्तोष।
अतः सदा एकान्त दृष्टि में, बने रहा करते हैं दोष।।४॥

अन्वयार्थ- वादी और प्रतिवादी के विवाद में उदाहरण की सिद्धि होने पर साध्य अच्छी तरह सिद्ध हो जाता है परन्तु वैसी दृष्टान्त भूत कोई वस्तु दृष्टिगोचर नहीं है जो सर्वथा एकांतवाद का नियमन करने वाली हो क्योंकि आपका अनेकान्त मत समस्त-साध्य, साधन और दृष्टान्त में अपना प्रभाव डाले हुए है।

शिवासु पूज्योऽभ्युदय-क्रियासु, त्वं वासुपूज्यस्त्रिदशेन्द्र-पूज्यः।
मयाऽपि पूज्योऽल्प-धिया मुनीन्द्र, दीपार्चिषा किं तपनो न पूज्यः॥५॥

अनेकांत की सिद्धि प्रदायक, न्याय दृष्टि के लेकर बाण।
शत्रु मोह अज्ञान आत्म के, हरण किए हैं उनके प्राण।।
आत्म बोध वैभव की स्वामी, आप दिखाए अनुपम राह।
अतः आपकी स्तुति करने, की है मेरे मन में चाह।।५॥

अन्वयार्थ- हे श्रेयो जिनेन्द्र! एकान्तदृष्टि के निषेध की सिद्धि न्याय रूप वाणों के द्वारा होती हैं अर्थात् आपने न्याय रूपी वाणी के द्वारा सर्वथा एकान्त वादियों का निराकरण कर उन पर विजय प्राप्त की है और जिस कारण आप अज्ञानरूपी शत्रु अथवा मोहनीय कर्म से युक्त ज्ञानावरणादि घातिया कर्मों को नष्ट कर केवल ज्ञानरूप विभूति अथवा समवशरणादि रूप लक्ष्मी के सम्राट हुए हैं इस कारण हे अर्हन्त आप मेरे स्तवन के योग्य हैं अर्थात् मैं आपकी स्तुति करता हूँ।

वासुपूज्य

न पूजयाऽर्थस्त्वयि वीतरागे, न निन्दया नाथ विवान्त-वैरे।
तथापि ते पुण्य-गुण-स्मृतिर्नः, पुनातु चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः॥१॥

मंगलमय कल्याण क्रियाओं, में हो पूज्य आप हे नाथ।
वसूपूज्य नृप के सुत तुम पद, पूजे इन्द्र झुकाए माथ।।
हम जैसे अल्पज्ञों द्वारा, पूज्य आप हो हे जिन नाथ।
पूजा जाता दीप शिखा से, दीप्तिमान रवि ज्यो दिननाथ।।१॥

अन्वयार्थ- हे गणधरादि मुनियों के स्वामी! कल्याणकारिणी स्वर्गावतरण आदि कल्याणकों की क्रियाओं में पूज्य वासुपूज्य नाम को धारण करने वाले आप चूँकि इन्द्र तथा चक्रवर्ती आदि के द्वारा पूज्य हैं अतः अल्पबुद्धि के धारक मुझ समन्तभद्र के द्वारा भी पूज्य हैं क्या दीपशिखा के द्वारा सूर्य पूजनीय नहीं होता।

पूज्यं जिनं त्वाऽचर्यतो जनस्य, सावद्य-लेशो बहु-पुण्य-राशौ।
दोषाय नालं कणिका विषस्य, न दूषिका शीत-शिवाऽम्बुराशौ॥२॥

नहीं प्रयोजन पूजा से है, वीतराग हैं आप महान।
द्वेष रहित हो अतः नहीं है रोष बुद्धि निन्दन का ध्यान।।
नाथ! आपके पुण्य गुणों का, फिर भी स्मरण होय पवित्र।
दूर हटाकर दुरित वासना, करता पावन चित्त चरित्र।।२॥

अन्वयार्थ- हे स्वामिन्! यद्यपि राग से रहित आप में पूजा के द्वारा प्रयोजन नहीं है और वैर से रहित आपमें निन्दा के द्वारा मतलब नहीं है तो भी आपके प्रशस्त गुणों का स्मरण हमारे मन को पापरूपी अञ्जन से पवित्र करें-दूर रखें।

यद्वस्तु बाह्यं गुण-दोष-सूते-, निर्मित्तमभ्यन्तर-मूलहेतोः।
अध्यात्म-वृत्तस्य तदंगभूत-मभ्यन्तरं केवलमप्यलं ते॥३॥

नाथ! आपकी अर्चा करते, हैं इस जग के सारे जीवा
दूषण होते हैं पूजा में, उनके द्वारा अल्प अतीव।।

हे स्वामी कर सकें नहीं वें, विशद पुण्य में जरा विकार।

सागर के जल में विष का कण, क्या हो सकता दूषण कार।३॥

अन्वयार्थ— हे भगवन्! इन्द्र आदि के द्वारा पूजनीय तथा कर्मरूप शत्रुओं को जीतने वाले आपकी पूजा करने वाले मनुष्य के जो सरागपरिणति अथवा आरम्भादिजनित थोड़ा सा पाप का लेश होता है वह बहुत भारी पुण्य की राशि में दोष के लिए समर्थ नहीं है क्योंकि विष की अल्पमात्रा शीतल एवं आह्लादकारी जल से युक्त समुद्र में दोष उत्पन्न करने वाली नहीं है।

बाह्येतरपाधि-समग्रतेयं, कार्येषु ते द्रव्य-गतः स्वभावः।
नैवाऽन्यथा मोक्ष-विधिश्च पुंसां, तेनाऽभिवन्द्यस्त्वमृषिर्बुधानाम्॥४॥

बाह्य वस्तु है गुण दोषों की, उत्पत्ति में मात्र निमित्त।

इनका सम्बल पाकर क्योंकि, अन्तर्गति करता है चित्त।

सच्चे फल कारक होते हैं, जीवों के अभ्यन्तर भाव।

अंग भूत हैं वे भी उनके, जिनका है आध्यात्म स्वभाव।४॥

अन्वयार्थ— जो पुष्पादिक पदार्थ पुण्य और पाप की उत्पत्ति के बहिरङ्ग कारण हैं वह आत्मा में प्रवर्तने वाले अन्तरङ्ग-उपादानरूप मूलकारण का सहकारी कारण है। हे भगवन्! आपके मत में अन्तरङ्ग कारण बाह्य वस्तु से निरपेक्ष और सापेक्ष दोनों ही प्रकार के गुण दोष की उत्पत्ति में समर्थ है।

य एव नित्य-क्षणिकोदयो नया, मिथोऽनपेक्षाः स्व-पर-प्रणाशिनः।

त एव तत्त्वं विमलस्य ते मुनेः, परस्परैक्षाः स्व-परोपकारिणः॥५॥

बाह्य और अन्तर कारण के, मिलने पर होता है कार्य।

है स्वभाव द्रव्य का ऐसा, जो है आवश्यक अनिवार्य।

मोक्ष मार्ग ना हो सकता है, इसके बिना कहें तीर्थेश।

अतः आपके चरणों करते, नमन लोकवर्ती विवुधेश॥५॥

अन्वयार्थ— हे भगवन्! घट आदि कार्यों में यह जो बाह्य और आभ्यन्तर कारणों का पूर्णता है वह आपके मत में जीवादि द्रव्य गत स्वभाव है अन्य प्रकार से घटादि की विधि ही नहीं किन्तु मोक्षाभिलाषी पुरुषों के

मोक्ष की विधि भी घटित नहीं होती है इसीलिए पर ऋद्धियों से युक्त आप गणधरादि बुधजनों के वंदनीय है।

विमलनाथ

यथैकशः कारकमर्थ-सिद्धये, समीक्ष्य शेषं स्व-सहाय-कारकम्।
तथैव सामान्य-विशेष-मातृका, नयास्तवेष्टा गुण-मुख्य-कल्पतः॥१॥

क्षणिक नित्य आदिकनय जब तक, नहीं परस्पर हों सम्बद्ध।

मिथ्या कहलाएँगे तब तक, और परस्पर रहे विरुद्ध।

होकर के सापेक्ष करेगे, एक दूसरे का उपकार।

सम्यक तत्त्व भी होंगे यह, प्रभु विमलेश बताए सार॥१॥

अन्वयार्थ— जो भी नित्य अथवा क्षणिक आदि नय परस्पर में निरपेक्ष होकर अन्यमतों में निज और पर का नाश करने वाले हैं वे ही नय परस्पर की अपेक्षा रखते हुए निज और पर का उपकार करने वाले होकर प्रत्यक्षज्ञानी आप विमल जिनेन्द्र के मत में वस्तु स्वरूप होते हैं।

परस्परैक्षाऽन्वय-भेद-लिंगतः, प्रसिद्ध-सामान्य-विशेषयोस्तव।

समग्रताऽस्ति स्व-पराऽवभासकं, यथा प्रमाणं भुवि बुद्धि-लक्षणम्॥२॥

कारक में होता है जैसे, एक दूसरे का आधार।

अर्थ सिद्ध तब ही होता है, ऐसा कहते जिन अनगार।

मुख्य रूप से गुण वैसे ही, कहे गये सामान्य विशेष।

यही रहा तत्त्वों का शाधक, हे जिनेन्द्र! विशद उपदेश॥२॥

अन्वयार्थ— जिस प्रकार एक एक उपादान कारण या निमित्त कारण अपन सहायता करने वाले अन्यकारक की अच्छी तरह अपेक्षा करके कार्य की सिद्धि के लिए समर्थ होता है उसी प्रकार सामान्य और विशेष से उत्पन्न अथवा सामान्य और विशेष को जानने वाले एवं गौण और मुख्य की कल्पना से आपको अभिप्रेतनय कार्य की सिद्धि के लिए समर्थ है।

विशेष्य-वाच्यस्य विशेषणं वचो, यतो विशेष्यं विनियम्यते च यत्।

तयोश्च सामान्यमतिप्रसज्यते, विवक्षितात्स्यादिति तेऽन्यवर्जनम्॥३॥

होता रहा सामान्य विशेषों, में जब देव समन्वय ज्ञान।
उसमें तभी पूर्णता आती, तब ही होती है पहिचान।
देव! लेक जिस प्रकार से, सच्चा कहलाए वह ज्ञान।
स्व-पर दोनों तत्त्वों को जो, करे प्रकाशित बने प्रमाण॥3॥

अन्वयार्थ— हे भगवन्! जिस प्रकार पृथ्वी पर स्व और पर को प्रकाशित करने वाला ज्ञानरूप लक्षण से युक्त प्रमाणप्रसिद्ध हैं उसी प्रकार आपके मत में परस्पर एक दूसरे की अपेक्षा रखने वाले अभेद और भेद के ज्ञान से प्रसिद्ध सामान्य और विशेष की पूर्णता विद्यमान है।

नयास्तव स्यात्पद-सत्य-लाञ्छिता, रसोपविद्धा: इव लोह-धातवः।
भवन्त्यभिप्रेत-गुणा यतस्ततो, भवन्तमार्याः प्रणता हितैषिणः॥4॥

निज विशेषता जिन शब्दों में, बतलाता है जहाँ विशेष।
बनते वे ही शब्द विशेषण, और सामान्य विशेष्य विचार।
जो सामान्य कहा जाता है, जिन शब्दों में इसी प्रकार।
बनते वे ही शब्द विशेषण, और सामान्य विशेष्य विचार॥4॥

अन्वयार्थ— हे भगवन्! वाच्यभूत विशेष का वह वचन जिससे विशेष्य नियमित किया जाता है विशेषण कहलाता है और जो नियमित होता है वह विशेष्य कहलाता है और उन विशेषण और विशेष्य में यद्यपि सामान्य का प्रसङ्ग आता है परन्तु आपके मत में कथंचित् अर्थ के वाचक स्यात् पद के द्वारा विवक्षित विशेषण विशेष्य से अविवक्षित विशेषण विशेष्य का परिहार हो जाता है।

अनन्त-दोषाशय-विग्रहो ग्रहो, विषंगवान् मोहमयश्चिरं हृदि।
यतो जितस्तत्त्वरुचौ प्रसीदता, त्वया ततोऽभूर्भगवानन्तजित्॥5॥

लोह धातु भी जिस प्रकार से, प्राप्त रसायन का संयोग।
इष्ट गुणोयुत हो जाता है, नष्ट अनेको करता रोग।
नाथ! स्यात् पद संयुत वे नय, उसी प्रकार करते हैं काम।
अभिप्राय के शाधक बनते, अतः आपके चरण प्रणाम॥5॥

अन्वयार्थ— हे भगवन्! चूँकि स्यात्पदरूपी सत्य से चिह्नित आपके नय रस से अनुलिप्त लोहधातुओं के समान इष्ट गुणों से युक्त पक्ष में

सुवर्णआदि इष्ट पदार्थ के गुणों से युक्त होते हैं इसलिए हित के इच्छुक गणधर आदि उत्तम पुरुष आपके प्रति नम्रीभूत हैं।

अनन्तनाथ

कषाय-नाम्नां द्विषतां प्रमाथिना-मशेषयन्नाम भवानशेषवित्।
विशोषणं मन्मथ दुर्मदाऽऽमयं, समाधि-भैषज्य-गुणैर्व्यलीनयत्॥1॥

दोष अनन्त गर्भ में पलते, जिसके ऐसा मोह पिशाच।
हृदय निवासी बन अनादि से, नचा रहे हैं जग को नाच।
किया तत्त्व विज्ञान के द्वारा, नाथ! आपने उसे समाप्त।
आप नाम पाए अन्वर्थक, देव अनन्त जिनेश्वर आप्त॥1॥

अन्वयार्थ— जिसका शरीर अनंत रगादि दोषों का आधार तथा जो चिरकाल से हृदय में संलग्न था अथवा ममता भाव से सहित था ऐसा मोहरूप पिशाच तत्त्वश्रद्धा में प्रसन्न रहने वाले आपके द्वारा क्योंकि जीत लिया गया था इसलिए आप भगवान अनन्तजित इस सार्थक नाम को धारण करने वाले हुए हैं।

परिश्रमाऽम्बुर्भय-वीचि-मालिनी, त्वया स्वतृष्णा-सरिदाऽऽर्य! शोषिता।
असंग-घर्माक-गभस्ति-तेजसा, परं ततो निर्वृति-धाम तावकम्॥2॥

दुष्ट कषाय नाम का 'शत्रू, कलुषित करता आत्म स्वभाव।
किया आपने हे अशेषवित, उस कषाय का पूर्ण अभाव।
सदा आत्म 'शोषण करता है, रोग दर्प मन्मथ हे देव!
नाथ! समाधी रूपी औषधि से, वह नष्ट हुआ स्वमेव॥2॥

अन्वयार्थ— हे भगवन्! आप दुख देने वाले कषाय नामक शत्रुओं के नाम को हृदय में समाप्त करते हुए सर्वज्ञ हुए हैं तथा आपने ध्यानरूप औषधि के गुणों के द्वारा संताप कारक कामदेव के दुष्ट दर्परूपी रोग को विलीन किया है— नष्ट किया है।

सुहृत्त्वयि श्रीसुभत्वमश्नुते, द्विषंस्त्वयि प्रत्ययवत्प्रलीयते।
भवानुदासीनतमस्तयोरपि, प्रभो परं चित्रमिदं तवेहितम्॥3॥

तृष्णा की सरिता है जिसमें, भरा परिश्रम जल हे धीरा।
तरल तरंगे उठती भयकी, जिसमें करती चित्त अधीरा।।
त्याग सूर्य की किरणावलि का, डाल आपने प्रखर प्रताप।
उसको 'शोषित करके पहुँचे, निवृत्ति धाम स्वयं प्रभु आप।।3।।

अन्वयार्थ— जिसमें परिश्रम रूप जल भरा है और भयरूप तरङ्गों कह मालाएं उठ रही हैं, ऐसी अपनी भोगाकांक्षारूप नदी हे पूज्य आपके द्वारा निष्परिग्रहत्वरूप ग्रीष्मकालीन सूर्य की किरणों के तेज से सुखा दी गई है इसलिए उसके आगे विद्यमान निर्वाणस्थान आपका ही है अथवा आपका अनन्त ज्ञानादितेज अत्यन्त उत्कृष्ट है।

त्वमीदृशस्तादृश इत्ययं मम, प्रलाप-लेशोऽल्प-मतेर्महामुने।
अशेष-माहात्म्यमनीरयन्नपि, शिवाय संस्पर्श इवामृताम्बुधेः।।4।।

सत्य उपाशक नाथ! आपका, पाता है सम्पत्ति अनेक।
और स्वयं मिटता दुर्बद्धी, समालोचक जो हो अविवेक।।
किन्तु आपका दोनों में ही, उदासीन अनपेक्षित भाव।
विस्मय कारी है स्वामी यह, परम आपका चरित स्वभाव।।4।।

अन्वयार्थ— हे भगवन्! आप में उत्तम हृदय को रखने वाला-भक्तपुरुष लक्ष्मी के वल्लभपने को प्राप्त होता है और आपमें द्वेष रखने वाला-अभक्त पुरुष व्याकरण के प्रसिद्ध क्विप् आदि प्रत्ययों अथवा क्षायोपशमिक ज्ञान के समान नष्ट हो जाता है— चतुर्गति के दुःखों का अनुभव करता है परन्तु आप उन दोनों-भक्त और अभक्त पुरुषों के विषय में अत्यन्त उदासीन हैं-रागद्वेष से रहित हैं। हे स्वामिन्! आपकी यह चेष्टा अत्यन्त आश्चर्यकारी हैं।

धर्म-तीर्थमनघं प्रवर्तयन्, धर्म इत्यनुमतः सतां भवान्।
कर्म-कक्षमदहत्तपोऽग्निभिः शर्म शाश्वतमवाप शंकरः।।5।।

परम पुरुष हो नाथ! आप तो, ऐसी भी वैसे भी आप।
मन्द बुद्धि मैं इस प्रकार से, करता रहता रहा प्रताप।।
महिमा वर्णन में समर्थ ना, रहा आपकी हे आदर्श!
सुधा सिन्धु का सुख प्रद जैसे, सुख कारक मानो स्पर्श।।5।।

अन्वयार्थ— हे समस्त पदार्थों को जानने वाले मुनिनाथ! आप ऐसे हैं वैसे है इस प्रकार का यह मुझ अल्पबुद्धि का थोड़ा सा प्रलाप आपकी समस्त महिमा को न कहता हुआ भी सुधासागर के समीचीन स्पर्श के समान मोक्ष के लिए है-मोक्ष सुख की प्राप्ति का कारण है।

धर्मनाथ

देव-मानव-निकाय-सत्तमै रेजिषै परिवृतो वृतोबुधैः।
तारका-परिवृतोऽतिपुष्कलो व्योमनीवशश-लाञ्छनोऽमलः।।1।।

धर्म तीर्थ 'शुभ दोष रहित है, दिया आपने यह उपदेश।
सज्जन पुरुषों ने इस कारण, कहा आपको धर्म जिनेश।।
भष्म किया तप की ज्वाला से, कर्मों के वन को हे देव!
'शाश्वत सुख जग में सुखकारी, पाया फिर तुमने स्वमेव।।1।।

अन्वयार्थ— हे भगवन्! निर्दोष धर्मरूपी तीर्थ अथवा धर्म का प्रतिपादन करने वाले अगम की प्रवर्तताते हुए आप गणधरदेवादि विद्वानों के द्वारा धर्म इस सार्थक नाम से युक्त माने गये हैं। आपने तपरूपी अग्नियों के द्वारा कर्मरूपी वन को जलाया है तथा अविनाशी सुख प्राप्त किया है इसलिए आप सत्पुरुषों के द्वारा शंकर इस नाम से युक्त माने गये हैं।

प्रातिहार्य-विभवैः परिष्कृतो, देहतोऽपि विरतो भवान्भूत्।
मोक्षमार्गमशिषन्नरामरान्, नाऽपि शासन-फलैऽषणाऽतुरः।।2।।

महा सभा में समवशरण की, हुए विराजित हे जिन नाथ।
बैठे देव विमल तनधारी, और मनुज बुधजन की साथ।।
तारागण से वेष्टित जैसें, अति सुन्दर सम्पूर्णाकार।
'शोभित होता है अम्बर में, विमल चन्द्र ज्योत्सना भण्डार।।2।।

अन्वयार्थ— हे धर्मजिन! देवसमूह और मनुष्य समूह में अत्यन्त श्रेष्ठ भव्य जीवों के द्वारा चारों ओर से वेष्टित तथा गणधरादि विद्वानों से घिरे हुए आप आकाश में ताराओं से परिवेष्टित घनपटलादि मल से रहित संपूर्ण चन्द्रमा के समान सुशोभित हुए थे।

काय-वाक्य-मनसां प्रवृत्तयो, नाऽभवन्स्तव मुनेश्चकीर्षया।
नाऽसमीक्ष्य भवतः प्रवृत्तयो, धीर तावकमचिन्त्यमीहितम्॥३॥

प्रातिहार्य वैभव है स्वामी, प्राप्त आपको है 'शुभकार।
आप देह से भी विरक्त हैं, किन्तु नाथ महिमा भण्डार।
यद्यपि जग में मोक्ष मार्ग का किए, किए प्ररूपण प्रभो! महान।
किन्तु ना 'शासन फल की वांछा, रही आपको हे भगवान॥३॥

अन्वयार्थ- हे भगवन्! आप सिंहासनादि प्रातिहार्यो तथा समबसरणादि विभूतियों से विभूषित होते हुए भी न केवल उनसे किन्तु शरीर से भी ममत्व रहित थे तथा आपने मनुष्यों और देवों को मोक्षमार्ग का उपदेश दिया था फिर भी आप उपदेश के फल की इच्छा से आतुर-व्यग्र नहीं हुए थे।

मानुषीं प्रकृतिमभ्यतीतवान्, देवतास्वपि च देवता यतः।
तेन नाथ परमाऽसि देवता, श्रेयसे जिनवृष! प्रसीद नः॥४॥

बाह्य पदार्थों से विरक्त हो, हुए स्वयं में अन्तर्लीन।
चेष्टाएं मन वचन कायकी, होती थी पर इच्छा हीन।
जरा नहीं असमीक्ष्य कारिता, का उनमें फिर भी था लेश।
चेष्टाएँ सारी अचिन्त्य हैं, धीर वीर धारी धर्मेश॥४॥

अन्वयार्थ- हे नाथ! आप प्रत्यक्षज्ञानी के काय वचन और मन की चेष्टाएं करने की इच्छा से नहीं हुई तथा आपकी प्रवृत्तियां चेष्टाएं वस्तुस्वरूप को ज्यों का त्यों जाने बिना नहीं हुई परीषदादिक तथा अन्यमतावलम्बियों के प्रश्न आदि से चित्त को क्षुब्धित न करने वाले हे धीर वीर धर्मजिनेन्द्र! आपका चरित अचिन्तनीय है आश्चर्य करने वाला है।

विधाय रक्षां परतः प्रजानां, राजा चिरं योऽप्रतिम-प्रतापः।
व्यधात्पुरस्तास्वत एव शान्तिर्मुनिर्दयामूर्तिरिवाऽघशान्तिम्॥५॥

निर्बलताएँ नर जीवन की, जिसका पाए प्रभु जी पार।
विशद दिव्यता नाथ आपको, भी तो कहती देव पुकार।
परम देवता धर्मनाथ जी, अतः आप है वृष की खान।
नाथ! आपका आशिष पाकर, हम भी करें आत्म कल्याण॥५॥

अन्वयार्थ- हे भगवन्! चूंकि आप मानव स्वभाव को अतिक्रान्त कर गये हैं और इन्द्र चन्द्र आदि देवों में भी देवता हैं, पूज्य हैं इसलिए हे स्वामिन! आप उत्कृष्ट देवता हैं। हे जिनेन्द्र! हमारे कल्याण की एि प्रसन्न होइये॥

शांतिनाथ

चक्रेण यः शत्रुः भयंकरेण, जित्वा नृपः सर्व-नरेन्द्र-चक्रम्।
धि-चक्रेण पुनर्जिगाय, महोदयो दुर्जय-मोह-चक्रम्॥१॥

जिन स्वामी ने राज्य काल में, अमित तेज बल से चिरकाल।
प्रजावर्ग की शत्रू दल से, रक्षा की बनकर प्रतिपाल।
दयामूर्ति न किया आपने, पापों का भी काम तमाम।
आत्म 'शांति संयुक्त आपने, शांतिनाथ शुभ पाया नाम॥१॥

अन्वयार्थ- जो शांतिजिनेन्द्र शत्रुओं से प्रजाजनों की रक्षाकर चिरकाल तक पहले अतुल्य पराक्रमी राजा हुए और फिर स्वयं ही मुनि होकर जिन्होंने दया की मूर्ति की तरह पापों की शांति की।

राज-श्रिया राजसु राज-सिंहो, रराज यो राजसुभोग-तन्त्रः।
आर्हन्त्य-लक्ष्म्या पुनरात्म-तन्त्रो, देवाऽसुरोदार-सभे रराज॥२॥

????????????

????????????

????????????

????????????

अन्वयार्थ- गर्भावतरण आदि कल्याणकों की परम्परा से युक्त जो शांति जिनेन्द्र गृहस्थावस्था में शत्रुओं को भय उत्पन्न करने वाले सुदर्शन चक्र के द्वारा समस्त राजाओं के समूह को जीतकर चक्रवर्ती हुए और पश्चात् वीतरागावस्था में जिन्होंने ध्यान रूप चक्र के द्वारा कठिनाई से जीतने योग्य मोहनीय कर्म की मूल तथा उत्तरप्रकृतियों के समूह को जीता था।

यस्मिन्नभूद्वाजनि राज-चक्रं, मुनौ दया-दीधिति-धर्म-चक्रम्।
पूज्ये मुहुः प्राञ्जलि देव-चक्रं, ध्यानोन्मुखे ध्वसि कृतान्त-चक्रम्॥३॥

दिव्य राज्य लक्ष्मी से मण्डित, हो नरेश परिषद के नाथ।
हुए सुशोभित पाकर अतिशय, दिव्य राज्य भोगों के साथ।।
स्वात्म तंत्र होकर परिषद में, आप सुरासुर की हे देव।
नाथ दिव्य केवल्य लक्ष्मी, से भी मण्डित हुए स्वमेव।।3।।

अन्वयार्थ— राजाओं में श्रेष्ठ तथा राजाओं के उत्तम भोगों के अधीन
अथवा राजाओं के उत्तम को स्वाधीन रखने वाले जो शांतिजिनेन्द्र सराग
अवस्था में राजाओं के बीच नौनिधि तथा चौदह रत्नों से युक्त राजलक्ष्मी
के द्वारा सुशोभित हुए थे और पश्चात् वतीरागावस्था में आत्माधीन होते
हुए देव और धरणेन्द्रादिकों की महती सभा में अष्ट प्रतिहार्य रूप बाह्य
तथा अनन्तज्ञानादिरूप अतरङ्ग विभूति से सुशोभित हुए थे।

स्वदोष-शान्त्या-विहिताऽऽत्मशान्तिः, शान्तेर्विधाता शरणं गतानाम्।
भूयाद्भव-क्लेश-भयोपशान्त्यै, शान्तिर्जिनो मे भगवान् शरण्यः।।4।।

राज्य काल में प्रभो! आपके, वश में हुआ नृपति समुदाय।
तत्रित था मुनि धर्म काल में, दया युक्त 'शुभ धर्म निकाय।।
विशद पूज्य केवल्य काल में, प्रांजल हुआ सुरासुर चक्र।
ध्यान काल में उग्र सुतप से, भस्म हुआ विधि वर्ग कुवक्र।।4।।

अन्वयार्थ— जिन शांति नाथ भगवान् के राजा होने पर राजाओं का समूह
बद्धाञ्जलि हुआ था जिन शांतिनाथ भगवान् के मुनि होने पर दयारूप
किरणों से युक्त अथवा दया को प्रकाशित करने वाला उत्तम क्षमा आदि
धर्मों का समूह अपने आधीन हुआ था अथवा जिन शांतिनाथ भगवान् के
समस्त पदार्थों को प्रत्यक्ष जानने वाले केवलज्ञानी हाने पर दयारूप
किरणों से युक्त देवरचित धर्मचक्र अपने आधीन हुआ था, जिन
शांतिनाथ भगवान् के पूज्य होने पर समवशरण में स्थित होकर धर्मोपदेशक
होने पर देवों का समूह बारबार बद्धाञ्जलि हुआ था और जिन शांतिनाथ
भगवान् के व्युपरतक्रियानिर्वृति नामक चतुर्थ शुक्ल ध्यान के सन्मुख होने
पर क्षय को प्राप्त होता हुआ कर्मों का समूह शरण की भिक्षा के लिए
बद्धाञ्जलि हुआ था।

कुन्थु-प्रभृत्यखिल-सत्त्व-दयैकतानः कुन्थुर्जिनो ज्वर-जरा-मरणोपशान्त्यै।
त्वं धर्म-चक्रमिह वर्तयसि स्म भूत्यै, भूत्वा पुरा क्षितिपतीश्वर-चक्रपाणिः।।5।।

निज दोषों की 'शांती करके, किया आत्म 'शांती को प्राप्त।
'शांति विधाता 'शरणागत के, बनकर संकट किए समाप्त।।
भव क्लेश उपशान्त कार्य में, हे श्री 'शांतिनाथ भगवान्।
'शरणभूत बनकर दो मुझको, परम आत्म बल दिव्य महान्।।5।।

अन्वयार्थ— अपने रागादि दोषों की शांति से जिन्हें आत्मशांति की प्राप्ति
हुई है, जो शरण में आये हुए जीवों को शांति के करने वाले है जो
कर्मरूप शत्रुओं को जीतने वाले है, विशिष्टज्ञान अथवा लोकोत्तर ऐश्वर्य
से सहित है तथा शरण देने में निपुण हैं वे शांतिनाथ जिनेन्द्र मेरे
संसारपरिभ्रमण, क्लेशों और भयों की शांति के लिए हो।

कुन्थुनाथ

तृष्णार्चिषः परिदहन्ति न शान्तिरासा-मिष्टेन्द्रियार्थ-विभवैः परिवृद्धिरेवा
स्थित्यैव काय-परिताप-हरं निमित्त-मित्यात्मवान् विषयसौख्य-पराङ्मुखोऽभूत्।।1।।

दिव्य चक्र के स्वामी होकर, क्षिति पतियों के बनकर नाथ।
छोटे बड़े सभी जीवों के, बनें दयालू कुन्थुनाथ।।
जरा रोग मरणोपशांति के, हेतु बने जिन वर जयरूप।
सदा जलाए तृष्णा ज्वाला, नहीं जरा हो इसकी 'शांति।।1।।

अन्वयार्थ— कुन्थु आदि समस्त जीवों पर एक-मुख्य विस्तार करने वाले
कुन्थुनाथ जिनेन्द्र थे। हे भगवन्! आपने पहले गृहस्थावस्था में राजविभूति
के निमित्त राजाधिराज चक्रवर्ती होकर पश्चात् इस संसार में समस्तरोग,
बुढ़ापा और मरण के विनाश से युक्त मोक्ष लक्ष्मी के लिए धर्म के समूह
को अथवा देवरचित धर्मचक्रनामक अतिशय विशेष को प्रवर्तित किया
है।

बाह्यंतपः परम-दुश्चरमाचरंस्त्व,-माऽऽध्यात्मिकस्य तपसः परिवृंहणार्थम्।
ध्यानं निरस्य कलुष-द्वय मुत्तरेस्मिन् ध्यानद्वये ववृतिषेऽतिशयोपपन्ने।।2।।

वैभव पा इन्द्रिय भोगों से, वृद्धी पावे और अशान्ति॥
अल्प काल के लिए काय का, भोग हरण करते संताप
हुए पराङ्मुख विषय सुखों से, इसीलिए हे जिनवर आप॥२॥

अन्वयार्थ— विषयकांक्षा रूप अग्नि की ज्वालाएं इस जीव को सब ओर से जला रही है। इष्ट इन्द्रियों के विषयों से इन विषयाकांक्षा रूप अग्नि की ज्वालाओं की शांति नहीं होती किन्तु सब ओर से वृद्धि ही होती है। यह वृद्धि इन्द्रिय विषयों के स्वभाव से ही होती है। निमित्त कारण मात्र शरीर के संताप को हरने वाला होता है विषयाकांक्षा रूप अग्निज्वालाओं का उपशमन करने वाला नहीं होता। हे भगवन् यह सब विचार कर ही जितेन्द्रिय होते हुए आप विषय जन्य सुख से पराङ्मुख अभूत हुए हैं। हुत्वा स्व-कर्म-कटुक-प्रकृतिश्चतस्रो, रत्नत्रयाऽतिशय-तेजसि जात-वीर्यः। बभ्राजिषे सकल-वेद-विधेविनेता, व्यभ्रे यथा वियति दीप्त- रुचिर्विवस्वान्॥३॥

उग्र बाह्य तप धारण करके, अमित आत्म साहस के साथ
अन्तरंग तप की वृद्धी को, किया आपने हे जिननाथ॥
कलुषित आर्त रौद्र दोनों ही, किए निरुद्ध आप दुर्ध्याना
उत्तम ध्यान किए धारण द्वय, धर्म शुक्ल जो अतिशय वाना॥३॥

अन्वयार्थ— हे भगवन्! आपने अन्तरङ्ग तप की वृद्धि के लिए अत्यंत कठिन अनशनादि बाह्य तप का आचरण किया था तथा आर्त रौद्र रूप दो छोटे ध्यानों को छोड़कर आप उत्कृष्ट अतिशय से युक्त अथवा अपने अवान्तर भेदों से सहित आगे के धर्मध्यान और शुक्लध्यान इन दो ध्यानों में स्थिर हुए थे।

यस्मान् मुनीन्द्र! तव लोक-पितामहाद्या, विद्या-विभूति-कणिकामपि नाप्नुवन्ति। तस्माद् भवन्तमजमप्रतिभेयमाऽऽर्याः स्तुत्यं स्तुवन्ति सुधियः स्व-हितैकतानाः॥४॥

रत्नत्रय के प्रखर तेज से,घाति कर्म चउ कटु फलकार।
मार्ग प्रदर्शक सत्य ज्ञान के, नाथ! शोभते अपरम्पार॥
निज बल से हे नाथ आपने, तत्क्षण होए किए कर क्षार।
दीप्त किरण से 'शोभित रवि ज्यों, नभ में शोभित हो शुभकार॥४॥

अन्वयार्थ— हे भगवन्! अपने कर्मों की चार कटुक प्रकृतियों को

सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय की प्रकृष्टता रूप अग्नि में होम कर आप सामर्थ्यवान् अनन्तवीर्य से युक्त हुए तथा समस्त लोकालोक विषयक ज्ञान के विधायक परमागम के प्रणेता होकर उस तरह देदीप्यमान हुए यथा जिस तरह कि मेघ रहित आकाश में देदीप्यमान किरणों से युक्त सूर्य।

गुण-स्तोकं सदुल्लङ्घ्य, तद्बहुत्व-कथा स्तुतिः।
आनन्त्यात्तै गुणा वक्तु मशक्यास्त्वयि सा कथम्॥५॥

लौकिक पिता महादिक जिनसे, हुए आप हे प्रभु उत्पन्ना
ज्ञानादिक वैभव के कुछ भी, नहीं आपके वे आसन्ना॥
अतः आपको अज कहकरके, करते आर्य आप का गाना
बुद्धिमान हैं जिनसे अपने, हित की रही विशद पहिचाना॥५॥

अन्वयार्थ— हे यतिनाथ! चूंकि ब्रह्मा आदि लौकिक देवता आपकी केवलज्ञान रूप विद्या और समवशरण रूप विभूति के एक कण मात्र को भी नहीं प्राप्त करते हैं इसलिए उत्तम बुद्धि के धारक एक आत्महित में निमग्न मोक्ष के अभिलाषी गणधरादि देव जन्म से रहित अपरिमित-अनंत तथा स्तुति के योग्य आपकी स्तुति करते हैं।

अरहनाथ

तथाऽपि ते मुनीन्द्रस्य, यतो नामाऽपि कीर्तितम्।
पुनाति पुण्य-कीर्तेस्ततो, ब्रूयाम किञ्चन॥१॥

विस्तृत करके अल्पगुणों को, बहुत कहना स्तुति गाना
गुणानन्त हैं नाथ आपके, कैसे हम कर सकें बखाना॥१॥

अन्वयार्थ— विद्यमान अल्प गुणों का उल्लंघन कर उन गुणों की अधिकता का कथन करना स्तुति कहलाती है परन्तु अनन्त होने के कारण आपके गुण कहने के लिए अशक्य है अतः आपके विषय में वह स्तुति किस प्रकार संभव है।

लक्ष्मी-विभव-सर्वस्वं, मुमुक्षोश्चक्र-लाञ्छनम्।
साम्राज्यं सार्वभौमं ते, जरत्-तृणमिवाभवत्॥२॥

नाम आपका फिर भी मुनिवर, कीर्तन करने से सुख धाम।

चित्त पुनीत हमारा होवे, इसीलिए करते गुणगान॥2॥

अन्वयार्थ— यद्यपि आपके गुणों की स्तुति अशक्य है तो भी प्रशस्त यश वाणी अथवा ख्याति के धारक तथा गणधरादि मुनियों के स्वामी आपका उच्चरित नाम भी चूँकि हमें पवित्र करता है इसलिए कुछ कहते हैं।

तव रूपस्य सौन्दर्य, दृष्ट्वा तृप्तिमनापिवान्।

द्वयक्षः शक्रः सहस्राक्षो, बभूव बहु-विस्मयः॥3॥

सार्वभौम साम्राज्य चक्रधर, लक्ष्मी के प्रत्यक्ष निवास।

हो विरक्त सब त्याग किए प्रभु, जैसे सड़ा पुराना घास॥3॥

अन्वयार्थ— हे भगवन्! लक्ष्मी की विभूति रूप सर्वस्व से युक्त तथा सुदर्शनचक्र रूप चिन्ह से सहित समस्त पृथिवी सम्बन्धी जो आपका साम्राज्य था वह मोक्ष के इच्छुक होने पर आपके लिए जीर्ण तृण के समान हो गया था।

मोहरूपो रिपुः पापः, कषाय-भट-साधनः।

दृष्टि-संपदुपेक्षाऽस्त्रैस्त्वया धीर! पराजितः॥4॥

तृप्त नहीं होते दो आखें, देख आप का रूप अपार।

दो नेत्रों के विस्मित होकर, किए इन्द्र ने नेत्र हजार॥4॥

अन्वयार्थ— हे भगवन्! आपके शरीर संबन्धी रूप की सुंदरता को देखकर संतोष को प्राप्त न होने वाला दो नेत्रों का धारक इन्द्र बहुत भारी आश्चर्य से युक्त एक हजार नेत्रों का धारक हुआ था।

कन्दर्पस्योद्धरो दर्पस्त्रैलोक्य-विजयाऽर्जितः।

हेपयामास तं धीरे, त्वयि प्रतिहतोदयः॥5॥

पापी मोह रूप 'शत्रू' है, शाधक जिनके सुभट कषाय।

किया आपने अपनो हत बल, दर्श ज्ञान चारित्रो पाया॥5॥

अन्वयार्थ— परीषहादि से जिनका चित्त कभी क्षोभ को प्राप्त नहीं होता ऐसे हे अर जिनेन्द्र! आपने पाप रूप तथा कषायरूप योद्धाओं की सेना से सहित मोहनीय कर्मरूपी शत्रु को सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र रूप

शस्त्रों के द्वारा पराजित किया है।

आयत्यां च तदात्वे च, दुःख-योनिर्दुरुत्तरा।

तृष्णा-नदी त्वयोत्तीर्णा, विद्या-नावा विविक्तया॥6॥

तीन लोक पर विजय प्राप्त कर, बढ़ा काम कादर्प महान।

देख आपको धीर हुआ वह, लज्जित हत प्रभ हुआ क्लाना॥6॥

अन्वयार्थ— तीनों लोकों की विजय से उपार्जित कामदेव के उत्कट बहुत भारी गर्व ने धीर वीर आपके विषय में खण्डित प्रसर हो कामदेव को लज्जित किया था।

अन्तकः क्रन्दको नृणां, जन्म-ज्वर-सखः सदा।

त्वा-मन्त-कान्तकं प्राप्य, व्यावृत्तः काम-कारतः॥7॥

इह पर लोक वास में दुस्तर, दुःख दायक मानो जल धारा।

कि विराग विज्ञान नाव से, तृष्णा नदी आपने पार॥7॥

अन्वयार्थ— हे भगवन्! जो परलोक तथा इस लोक दोनों ही जगह दुःखों की उत्पत्ति का कारण है तथा जिसका पार करना अत्यन्त कठिन है ऐसी तृष्णा रूपी नदी आपने निर्दोष विद्या-सम्यग्ज्ञान रूपी नौका के द्वारा पार की है।

भूषा-वेषाऽऽयुध-त्यागि, विद्या-दम-दया-परम्।

रूपमेव तवा चष्टे, धीर! दोष-विनिग्रहम्॥8॥

जग जन को यम दुख देता है, जन्म रोग मित्रों के साथ।

निज का शत्रू जिन को पाके, स्वच्छ क्रिया से हुआ अनाथ॥8॥

अन्वयार्थ— हे भगवन् पुनर्जन्म तथा ज्वर आदि रोगों का मित्र और हमेशा मनुष्यों को रूलाने वाला यम यम का अंत करने वाले आपको प्राप्त कर अपनी स्वच्छन्द प्रवृत्ति से उपरत हुआ है।

समन्ततोऽंगभासां ते, परिवेषेण भूयसा।

तमो बाह्यमपाकीर्णमध्यात्मं ध्यान-तेजसा॥9॥

शस्त्र रहित वस्त्राभूषण, सद्ज्ञान दया शम दम आगारा।

रूप आपका ना था! बताए, निर्दोषत्व आपका सार॥9॥

अन्वयार्थ— हे धीर! अरजिनेन्द्र! आभूषणों, वेषों, तथा शस्त्र का त्याग करने वाला तथा ज्ञान इन्द्रिय दमन और दया में तत्पर आपका रूप ही रागादि दोषों के अभाव को कहता है।

सर्वज्ञ-ज्योतिषोद्भेतस्तावको महिमोदयः।
कं न कुर्यात् प्रणमं ते, सत्त्वं नाथ! सचेतनम्॥10॥

बिखरी हुई अंग आभा से, बाह्य ध्वान्त का किए विनाश।
ध्यान ज्योति से नाथ आपने, प्राप्त किया आध्यात्म प्रकाशा॥10॥

अन्वयार्थ— हे भगवन्! सब और फैलने वाले आपके शरीर संबंधी प्रभाओं के विशाल मण्डल के द्वारा बाह्य अन्धकार नष्ट हुआ है और ध्यान रूप तेज के द्वारा ज्ञानावरणादि कर्म रूप अन्तरङ्ग का अंधकार नष्ट हुआ है।

तव वागमृतं श्रीमत्, सर्व-भाषा-स्वभावकम्।
प्रीणयत्यमृतं यद्वत्, प्राणिनो व्यापि संसदि॥11॥

अखिल वस्तु तत्त्वज्ञ आपका, महिमा मय देखे जो ज्ञान।
नाथ आपके श्री चरणों में, नहीं झुकेगा कौन पुमाना॥11॥

अन्वयार्थ— हे अरनाथ जिनेन्द्र! समस्त पदार्थों को जानने वाली केवलज्ञान रूपी ज्योति से उत्पन्न हुआ आपकी महिमा का उत्कर्ष किस गुणदोष के विचार में चतुर प्राणी को नम्रीभूत नही कर देता है? सबको कर देता है।

अनेकान्तात्मदृष्टिस्ते, सती शून्यो विपर्ययः।
ततः सर्वं मृषोक्तं स्यात्, तदयुक्तं स्वघाततः॥12॥

अखिल सभा में व्याप्त आपकी, वचन सुधा अनुपम श्री मान।
प्राणी मात्र को प्रमुदित करती, ज्यों अमृतका कर रसपान॥12॥

अन्वयार्थ— हे भगवन्! पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादन करने रूप लक्ष्मी सहित, समस्त भाषाओं रूप परिणामन करने वाले स्वभाव से युक्त तथा समवशरण सभा में व्याप्त होने वाला आपका वचन रूप अमृत अमृत के समान प्राणियों को संतुष्ट करता है।

ये परस्खलितोन्निद्राः स्व-दोषेभ-निमीलिनाः।
तपस्विनस्ते किं कुर्युरपात्रं त्वन्मत-श्रियः॥13॥

सत्य आपकी अनेकांतमय, दृष्टि 'शेष है मिथ्याज्ञान।
तत्त्व कथित जो इसके द्वारा करते वे अपना अवशाना॥13॥

अन्वयार्थ— हे भगवन्! आपकी अनेकांत रूप दृष्टि सत्यार्थ है उससे विपरीत एकान्तमय शून्यरूप असत् है इसलिए उस अनेकांत रूप दृष्टि से रहित सब कथन स्वघातक होने से मिथ्यारूप है अथवा एकांतमत के आश्रय से कहा हुआ समस्त वस्तु स्वरूप असत्य है तथा स्वाघातक होने से वह अनुचित है।

ते तं स्वघातिनं दोषं, शमीकर्तुमनीश्वराः।
त्वद्विषः स्वहनो बालास्तत्त्वाऽवक्तव्यतांऽश्रिताः॥14॥

खण्डित करते अनेकांत जो, जिनको दिखते ना निज दोष।
दीन अपात्र सत्य पथ क्या वे, तापस पा सकते निर्दोष?॥14॥

अन्वयार्थ— जो एकान्तवादी पर अनेकांतमत में खलित विरोध आदि दोषों के देखने में उन्निद्र-जागृत रहते हैं और स्व अपने सदेकान्त आदि एकान्त में दोष-स्वघातत्व आदि दोषों के विषय में इभ निमीलन से युक्त है अर्थात् उन्हें देखते हुए भी नहीं देखते हैं वे बेचारे क्या करें— स्वपक्ष सिद्धि और परपक्ष के निराकरण में वे असमर्थ हैं तथा आपके मत रूपी लक्ष्मी के अपात्र है।

सदेक-नित्य-वक्तव्यास्तद्विपक्षाश्च ये नयाः।
सर्वथेति प्रदुष्यन्ति, पुष्यन्ति स्यादितीह ते॥15॥

दोष दूर करने में अपने, वे अशक्त वादी अज्ञान।
कहते होकर श्रान्त अन्त में, अवतव्य है तत्त्व विधान॥15॥

अन्वयार्थ— वे एकान्तवादी उस पूर्वोक्त स्वघाती दोष को शमन करने के लिए असमर्थ हैं, आप अनेकान्तवादी से दोष रखते हैं अपने आपका घात करने वाले हैं, यथा वद्ववस्तुस्वरूप से अनभिज्ञ है और इसीलिए तत्त्व की अवक्तव्यता का आश्रय लेते हैं।

अनेकान्तोऽप्यनेकान्तः, प्रमाण-नय-साधनः।
अनेकान्तःप्रमाणात् ते, तदेकान्तोऽर्पितान्यात्॥16॥

वस्तु सर्वथा कहते जो नय, नित्य एक वक्तव्य स्वरूप।
वही अनेक अशास्वत अथवा, अवक्तव्य ऐकान्तिक रूप॥16॥

अन्वयार्थ— सद्, एक, नित्य, वक्तव्य और इनसे विपरीत असत्, अनित्य अनेक, अवक्तव्य ये जो नय हैं वे इस जगत् में सर्वथा रूप से वस्तु तत्व को अत्यधिक विकृत करते हैं—सदोष बनाते हैं और कथंचित् रूप से वस्तु तत्व को पुष्ट करते हैं।

इति निरुपम-युक्त-शासनः, प्रिय-हित-योग-गुणाऽनुशासनः।
अरजिन! दम-तीर्थ-नायक-स्त्वमिव सतां प्रतिबोधनाय कः॥17॥

न्याय आपका स्यत् शब्दमय, सर्वथत्त्व करता परिहार।
कहता है जैसे को वैसा, है अन्यत्र नहीं यह सारा॥17॥

अन्वयार्थ— सर्वथारूप नियम का त्याग करने वाला तथा यथादृष्ट प्रमाण सिद्धवस्तुस्वरूप की अपेक्षा रखने वाला स्यात् शब्द आपके न्याय में है अपने आपके वैरी अन्य एकांतवादियों के न्याय में नहीं है।

मति-गुण-विभवानुरूपत-स्त्वयि-वरदाऽऽगम-दृष्टिरूपतः
गुण-कृशमपि किञ्चनोदितं, मम भवताद् दुरितासनोदितम्॥18॥

नय प्रमाण शासन जिसमें वह, अनेकांत भी है नैकान्त।
अनेकांत है जो प्रमाण से, अर्पित नय से वह एकान्त॥18॥

अन्वयार्थ— हे भगवन्! आपके मत में अनेकान्त भी प्रमाण और नय रूप साधनों से युक्त होने के कारण अनेकान्त स्वरूप है। प्रमाण की अपेक्षा अनेकान्त स्वरूप है और विवक्षित नय से अनेकान्त में एकान्त स्वरूप है।

यस्य महर्षेः सकल-पदार्थ-प्रत्यवबोधः समजनि साक्षात्।
साऽमर-मर्त्य जगदपि सर्वं, प्राञ्जलि भूत्वा प्रणिपतति स्म॥19॥

अनुपम शासन देव! आपका, इस प्रकार है भुक्ति प्रमुक्ता।
योग्य गुणो की जिसमें प्रियहित, सर्व व्यवस्था है उपयुक्ता॥

शांतितीर्थ के नायक हे अर, स्वामी आप जिनेन्द्र अनन्या।
प्रतिबोधक को भवि जीवों के, आप समान कौन है अन्या॥19॥

अन्वयार्थ— इस तरह हे अर जिनेन्द्र! आप उपमा रहित प्रत्यक्षादि प्रमाणों से युक्त शासन से सहित हैं, सुखदायक तथा फलकाल में हितकारक मन वचन काय के प्रशस्त व्यापार रूप योग और सम्यग्दर्शनादि गुणों का उपदेश देने वाले हैं तथा इन्द्रिय विजय को सूचित करने वाले आगम के नायक हैं। हे नाथ! आपके समान विद्वज्जनों को प्रतिबोध देने के लिए दूसरा कौन है? कोई नहीं है।

यस्य च मूर्तिः कनकमयीव, स्व-स्फुरदाभा-कृत-परिवेषा।
वागपि तत्त्वं कथयितुकामा स्यात्पद-पूर्वा रमयति साधून्॥20॥

निज मति गुण वैभव से जो कुछ, मैंने आगम के अनुसार।
हे वरदायक! कथन किया है, पूर्ण रूप वह है साकार।
यद्यपि कथना आपका स्वामिन, वह गुण है आपल्य प्रमाण।
किन्तु आपकी कृपा से मेरे, होवे पापों का अवशान॥20॥

अन्वयार्थ— हे वर को प्रदान करने वाले अरजिनेन्द्र! मैंने अपनी बुद्धि के गुणों की सामर्थ्य के अनुरूप तथा आगम से प्राप्त हुई दृष्टि के अनुसार आपके विषय में आपके गुणों का जो कुछ थोड़ा सा वर्णन किया है वह वर्णन मेरे पापों के नष्ट करने में समर्थ होवे।

मल्लिनाथ

यस्य पुरस्तात् विगलित-माना, नय-तितीर्थ्या भुवि विवदन्ते।
भूरपि रम्या प्रतिपदमासी-ज्जात-विकोशाम्बुज-मृदु-हासा॥1॥

विमल ज्ञान में लक्षित होते, जिन महर्षि के सकल पदार्थ।
सब प्रत्यक्ष तत्त्व जगती के, विशद हुए है जिनको स्वार्थ।
जिनके चरणों में तव आया, मानव देव अखिल संसार।
किया प्रणाम भक्ति युत नत हो, अंजलि बाँधे बारम्बार॥1॥

अन्वयार्थ— जिन महर्षि के जीवादि समस्त पदार्थों को सब ओर से अशेष विशेषता के साथ जानने वाला केवल ज्ञान स्पष्ट रूप से उत्पन्न

हुआ और इसलिए जिन्हें देवों तथा मनुष्यों से सहित सभी संसार ने बद्धांजली होकर प्रणाम किया। उन मल्लिजिन की शरण को प्राप्त हुआ हूँ।

यस्य समन्ताज्जिन-शिशिरांशोः शिष्यक-साधु-ग्रह-विभवोऽभूत्।
तीर्थमपि स्वं जनन-समुद्र-त्रासित-सत्त्वोत्तरण-पथोऽग्रम्॥2॥

मल्लिनाथ स्वामी का पावन, कनक रूप कमनीय 'शरीर।
भामण्डल अभामय सुन्दर, कहता जिन्हे धीर गम्भीर।
जिनकी वाणी तत्त्व कथन में, रही प्रवल बलवती उदार।
स्यात्पद गर्भित करने वाली, रंजित साधुवर्ग संसार।2॥

अन्वयार्थ— सुवर्ण से निर्मित के समान अपनी देदीप्यमान आभा से समस्त शरीर में व्याप्त भामण्डल को करने वाली जिनकी मूर्ति शरीराकृति और वस्तु स्वरूप को प्रकाशित करने की इच्छुक एवं स्यात्पद से सहित जिनकी वाणी भी भव्यजीवों को प्रसन्न करती है। उन मल्लिजिन की शरण को प्राप्त हुआ हूँ।

यस्य च शुक्लं परमतपोऽग्नि-ध्यानमनन्तं दुरितमधाक्षीत्।
तं जिन-सिंहं कृतकरणीयं, मल्लिमशल्यं शरणमितोऽस्मि॥3॥

प्रतिवादी जन जिनके आगे, होकर जग के विगलित मान।
शांत हो रहे छोड़ के अपना, सब पाण्डित्य और व्याख्यान।
पृथ्वी भी पाकर जिन स्वामी, का निर्मलतम पद संचार।
कमाल समानरम्य बने विकाशित, करती हृदय हास्य विस्तार।3॥

अन्वयार्थ— जिनके आगे गलितमान हुए एकान्तीवादी जन पृथिवी पर विवाद नहीं करते थे और जिनके विहार के समय पृथिवी भी पद पद पर विकसित कमलों से कोमल हास को धारण करती हुई मनोहर हुई थी मैं उन मल्लिजिन की शरण को प्राप्त हुआ हूँ।

अधिगत-मुनि-सुव्रत-स्थिति-मुनि-वृषभो मुनिसुव्रतोऽनघः।
मुनि-परिषदि निर्बभौ भवा-, नुडु-परिषत्परिवीत-सोमवत्॥4॥

हैं जिनेन्द्र जो शीत किरण शशि, तुल्य जिन्हों के चारों ओर।
शिष्य वर्ग नक्षत्रों जैसे, रहते हो आनन्द विभोर।।
जो सज्जन संसार वास में, होकर के रहते भयभीत।
सच्चे उद्धारक है उनके, स्वयं नाथ जो तीर्थ पुनीत।4॥

अन्वयार्थ— जिन मल्लि जिनेन्द्र रूपी चन्द्रमा के चारों ओर शिष्यसाधु रूप गृहों का ताराओं का विभव विद्यमान था और जिनका अपना शास्त्र भी संसार रूपी समुद्र से भयभीत प्राणियों के पार उतरने का प्रधान मार्ग था उन मल्लि जिनेन्द्र की शरण को प्राप्त हुआ हूँ।

परिणत-शिखि-कण्ठ-रागया, कृत-मद-निग्रह-विग्रहाऽऽभया।
तव जिन! तपसः प्रसूतया, गृह-परिवेष-रुचेव शोभितम्॥5॥

ज्वाला परम तपस्या की शुभ, शुल्क ध्यान है जिसका नाम।
कर डाला हैं पाप अनन्तों, को जिनने उससे निर्नाम।
हैं अशल्य जिन सिंह मल्लिजिन, वे कृतकृत्य नाथ निस्काम।
करते हैं हम निशदिन उनके, चरणाम्बुज में "विशद" प्रणाम।5॥

अन्वयार्थ— और जिनके शुक्लध्यान रूप उत्कृष्ट तपोग्नि ने अंत को प्राप्त न होने वाले अष्ट कर्म रूप पाप को दग्ध किया था उन जिनश्रेष्ठ कृतकृत्य माया मिथ्यात्वादि शल्यों से रहित मल्लि जिनेन्द्र की शरण को प्राप्त हुआ हूँ।

मुनिसुव्रतनाथ

शशि-रुचि-शुचि-शुक्ल-लोहितं, सुरभितरं विरजो निजं वपुः।
तव शिवमतिविस्मयं यते! यदपि च वाङ्मनसीयमीहितम्॥1॥

अधिगत कर चारित्र धर्म को, जिन मुनियों के हे मुनिनाथ।
अनघ श्री मुनिसुव्रत स्वामी, नाम आपका रहा यथार्थ।।
शोभा मुनियों की परिषद में, नाथ आपकी रही अनूप।
शोभित होता तारागण से, वेष्टित जैसे सोम स्वरूप।1॥

अन्वयार्थ— जिन्होंने मुनियों के उत्तम व्रतों की स्थिति को सुनिश्चित अथवा प्राप्त कर लिया है, जो मुनियों में श्रेष्ठ हैं, और जो चार घातिया

कर्म रूपी पाप से रहित है ऐसे आप मुनिसुव्रत इस सार्थक नाम को धारण करने वाले जिनेन्द्र समवशरण के बीच मुनियों की सभा में नक्षत्रों के समूह से घिरे हुए चन्द्रमा के समान सुशोभित हुए थे।

स्थिति-जनन-निरोध-लक्षणं, चरमचरं च जगत् प्रतिक्षणम्।
इति जिन! सकलज्ञ-लाञ्छनं, वचनमिदं वदतांवरस्य ते॥2॥

मोर कण्ठ सम कान्तिमान है, नाथ आपका रम्य शरीर।
तप से हुए कान्तिमय, जिनने किया कामको अबल अधीर॥
प्रभु आपके तन की आभा, सुन्दर दिखती है जिननाथ।
बैठे गोलाकार बनाकर, जैसे तारागण सब साथ॥2॥

अन्वयार्थ— काम अथवा अहंकार का निग्रह करने वाले हे मुनिसुव्रत जिनेन्द्र! तरुण मयूर के कण्ठ के समान वर्णवाली तप से उत्पन्न आपके शरीर की आभा— चारों ओर फैलने वाली दीप्ति चन्द्रमा के परिवेष-परिमण्डल की दीप्ति के समान सुशोभित हुई थी।

दुरित-मल-कलंकमष्टकं, निरुपम-योग-बलेन-निर्दहन्।
अभवदभव-सौख्यवान् भवान्, भवतु ममापि भवोपशान्तये॥3॥

शुक्लवर्ण का रक्त देहे में, चन्द्रकिरण सम परम पवित्र।
निर्मल तन है नाथ आपका, लज्जित जिससे, सुरभित इत्र॥
मंगलमय शिव रूप आपका, हे मतिवर आश्चर्य निवास।
निश्चित है मेरे मन में यह, नाथ आपका वचन विलास॥3॥

अन्वयार्थ— हे महामुनिराज! चन्द्रमा की किरणों के समान निर्मल एवं सफेद खून से युक्त अत्यंत सुगन्धित और रज रहित मल रहित जो आपका अपना शरीर था वह अत्यन्त शुभ तथा अत्यन्त आश्चर्य करने वाला और वचन तथा मन की भी जो चेष्टा वह भी अत्यन्त आश्चर्य करने वाली है।

स्तुतिः स्तोतुः साधोः कुशल-परिणामाय स तदा,
भवेन्मा वा स्तुत्यः, फलमपि ततस्तस्य च सतः॥4॥

विश्व चराचर अस्थिर है यह, सदा ना रहता एक समान।

इसमे व्यय उत्पाद ध्रौव्य का, चक्र सदा चलता गतिमान॥
श्रेष्ठ आपका हे उपदेशक!, अनुपम है ये वचन विलाश।
नाथ आपका जो करता हैं, सर्व तत्त्व ज्ञातृत्य प्रकाश॥4॥

अन्वयार्थ— हे मुनिसुव्रत जिनेन्द्र! चेतन और अचेतनरूप संसार क्षण क्षण में ध्रौव्य उत्पाद और व्यय रूप लक्षण से युक्त है—इस प्रकार का यह जो वक्ताओं में श्रेष्ठ आपका वचन है वह सर्वज्ञ का चिन्ह है आपकी सर्वज्ञता का द्योतक है।

किमेवं स्वाधीन्याञ्जगति सुलभे श्रायस-पथे,
स्तुयान्न त्वां विद्वान्, सततमभिपूज्यं नमि-जिनम्॥5॥

किया आपने अष्ट कर्म के, मलकलंक का निर्मम दाह।
स्वामिन योग शक्ति से अनुपम, जिसका है सामर्थ्य अथाह॥
हे जिन वर! सुख मिले, आपको इसीलिए संसारातीत।
अब संसार शांति को मेरी, बनिए कारण आप पुनीत॥5॥

अन्वयार्थ— हे भगवन् अनुपम शुक्लध्यान के बल से आठ प्रकार के कर्मकल कलङ्क को जलाते हुए आप मोक्ष सम्बन्धी अतीन्द्रियसुख से युक्त हुए हैं, ऐसे आप मुझ समन्त भद्र के भी संसार की उपशांति के लिए होवे।

नमिनाथ

त्वया धीमन्! ब्रह्म-प्रणिधि-मनसा जन्म-निगलं,
समूलं निर्भिन्नं, त्वमसि विदुषां मोक्ष-पदवी।
त्वयि ज्ञान-ज्योतर्विभव-किरणैर्भाति भगवन्भूवन् खद्योता,
इव शुचिरवावन्यमतयः॥1॥

साधु जनों का श्रुति विस्तारक, रहता लक्ष्य कुशल परिणाम।
हो स्तुत्य सामने या ना, फल उसको मिलता निस्काम॥
है कल्याण मार्ग इस जग में, सुल्भ रहा जब कि स्वाधीन।
हे नमि स्तुती आपकी, क्यों न करे तब विज्ञ प्रवीण॥1॥
अन्वयार्थ— भगवान् की स्तुति, स्तुति करने वाले भव्य पुरुष के

पुण्यसाधक-प्रशस्त परिणाम के लिये होती है स्तुति के काल अथवा स्तुति के देश में वह स्तुति का पात्र आराध्यदेव हो अथवा न हो और उस स्तुत्य से उस स्तुति करने वाले भव्य पुरुष को स्वर्गादि फल की प्राप्ति भी हो अथवा न हो इस प्रकार संसार में स्वाधीनता से कल्याण अथवा सम्यग्दर्शनादि मोक्ष सम्बन्धी मार्ग के सुलभ रहने पर क्या विचार पूर्वक कार्य करने वाला विवेकी जन सदा इन्द्रादि के द्वारा पूज्य आप नमि जिन की स्तुति न करें? अवश्य करें।

विधेयं वार्यं चाऽनुभयमुभयं मिश्रमपि तद्,
विशेषैः प्रत्येकं, नियम-विषयैश्चापरिमितैः।
सदाऽन्योऽन्यापेक्षैः, सकल-भुवन-ज्येष्ठ-गुरुणा,
त्वया गीतं तत्त्वं, बहु-न य-विवक्षेतर-वशात्॥2॥

किया आपने आत्म ध्यान से, नाथ जन्म बन्धन निर्मूल।
मुक्ति हेतु को विद्वत जन के, लिए आप हे जिन अनुकूल॥
नाथ आपके अन्तर्वैभव, का प्रकाश है ज्ञानोद्योत।
है मति भिन्न प्रभू के आगे, खर रवि आगे ज्यो खद्योत॥2॥

अन्वयार्थ- हे विशिष्ट बुद्धि से युक्त नमि जिन! शुद्ध आत्मस्वरूप में स्थिर चित्तवाले आपके द्वारा संसार रूपी बन्धन मूल कारण सहित नष्ट किया गया है इसलिए आप विद्वानों के लिए मोक्षमार्ग स्वरूप है। हे भगवन्! आपके केवलज्ञान ज्योति की संपदा रूप किरणों के द्वारा सुशोभित होने पर सुगत कपिल ईश्वर आदि अन्य मतावलम्बी जन ग्रीष्म ऋतु के सूर्य के देदीप्यमान रहने पर जुगनुओं के समान हो गये थे।

अहिंसा भूतानां, जगति विदितं ब्रह्म परमं,
न सा तत्राऽऽरम्भोऽस्त्यणुरपि च यत्राऽऽश्रमविधौ।
ततस्तत्सिद्धयर्थं, परम-करुणो ग्रन्थमुभयं,
भवानेवात्याक्षीन् च विकृत-वेषोपधि-रतः॥3॥

तत्त्व विवक्षित कहे आपने, अरू अविवक्षित नय अनुसार।
सदा परस्पर हे त्रिभुवन गुरु, वे नय सभी अपेक्षा कार॥
अस्ति नास्ति उभय अरू अनुभव, फिर अनुपम है अस्ति समेत।

अनुभय नास्ति उभय युक्त, अनुभय सप्त भंग ये हैं अभिप्रेता॥3॥

अन्वयार्थ- हे भगवन्! समस्त संसार के महान् गुरु स्वरूप आपने अनेक नयों की विवक्षा और अविवक्षता के वश विधि निषेध, मूर्त अमूर्त, स्थूलसूक्ष्म आदि प्रत्येक धर्म का लक्ष्य कर 'भङ्ग' सात ही होते हैं हीनाधिक नहीं इस नियम के विषय भूत और सदा एक दूसरे की अपेक्षा रखनेवाले अनन्त त्रैकालिक धर्मों के द्वारा उस वस्तु स्वरूप को विधि स्वरूप निषेध स्वरूप, विधि निषेध स्वरूप, अवक्तव्यस्वरूप और मिश्र रूप भी अर्थात् स्यादस्ति अवक्तव्य, स्यान्नास्ति अवक्तव्य तथा स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्य इस तरह सात भङ्गरूप कहा है।

वपुर्भूषा-वेष-व्यवधि-रहितं शान्त-करणं,
यतस्ते संचेष्टे स्मर-शर-विषाऽऽतंक-विजयम्।
बिना भीमै, शस्त्रैरदय-हृदयामर्ष-विलयं,
ततस्त्वं निर्मोहः, शरणमसि नः शान्ति-निलयः॥4॥

जीवन विश्व प्राणियों का है, परम अहिंसा भूत महान।
जहाँ जरा आरम्भ है किन्तू, उस आश्रम में ना स्थान॥
त्यागें अन्तर्बाह्य परिग्रह, परम अहिंसा के सिद्धयर्थी
नाथ आपतो परम कारुणिक, विकृत रहा फिर व्यर्थ॥4॥

अन्वयार्थ- हे भगवन्! प्राणियों की अहिंसा जगत् में परम ब्रह्म है परन्तु वह अहिंसा उस आश्रम विधि में नहीं है जिसमें कि थोड़ा भी आरम्भ होता है इसलिए उस अहिंसा धर्म की सिद्धि के लिए परम दयालु होकर आपने ही बाह्य और आभ्यन्तर के भेद से दोनों प्रकार के परिग्रह को छोड़ा है और यथाजात लिङ्ग के विरोधी वेष तथा परिग्रह में आसक्त नहीं हुए है।

भगवानृषिः परम-योग-दहन-हृत-कल्मषेऽधनः।
ज्ञान-विपुल-किरणैः सकलं प्रतिबुद्धय बुद्ध-कमलायतेक्षणः॥
हरिवंश-के तुरनवद्य-विनय-दम-तीर्था-नायकः।
शील-जलधिरभवो विभवस्त्वमरिष्टनेमि-जिनकुञ्जरोऽजरः॥5॥

इन्द्रिय जयी वस्त्र आभूषण, विरहित रहा प्रशान्त 'शरीर।

बता रहा है नाथ आपको, बिना अस्त्र के कोप विनाश।

हे निर्मोही शरणभूत हो, आप हमारे शांति निवास॥5॥

अन्वयार्थ— हे भगवन्! आभूषण वेष तथा वस्त्रादिक के आवरण से रहित और अपने विषयों से निस्पृह इन्द्रियों से युक्त शरीर चूँकि काम के बाण रूप विष से उत्पन्न व्याधि की विजय को तथा भयंकर शस्त्रों के बिना निर्दयहृदय सम्बन्धी क्रोध के विनाश को कह रहा है इसलिए आप मोह रहित और कर्मक्षय से उत्पन्न होने वाली शांति के स्थान हैं तथा हमारे शरणभूत-रक्षक हैं।

नेमिनाथ

त्रिदशेन्द्र-मौलि-मणि-रत्न-किरण-विसरोपचुम्बितम्।
पाद-युगलममलं भवतो, विकसत्कुशेशय-दलाऽरुणोदरम्॥
नख-चन्द्र-रश्मि-कवचाऽति-रुचिर-शिखराऽङ्गुलि-स्थलम्।
स्वार्थ-नियत-मनसः सुधियः प्रणमन्ति मन्त्र-मुखरा महर्षयः॥

होमे परम ध्यान ज्वाला में, कर्म काष्ठ हे ऋषि भगवान।

जग को नाथ जगाया तुमने, करके विशद प्रकाशित ज्ञान॥1॥

तीर्थ प्रणेता दोष रहित दम, विनयी हे हरिकुल के केतु।

अजर अमर जिन पुंगव नेमी, अरिष्ट शील सागर सुख सेतु॥2॥

अन्वयार्थ— जो विशिष्ट ज्ञानवान अथवा इन्द्रादि के द्वारा पूज्य हैं, जो परम ऋद्धियों से सम्पन्न हैं, उत्कृष्ट शुक्लध्यानी रूपी अग्नि में जिन्होंने कर्मरूपी ईन्धन को होम दिया है, जिनके नेत्र खिले हुए कमल के समान विशाल हैं जो हरिवंश के प्रधान हैं, जो निर्दोष विनय और इन्द्रियदमन के प्रतिपादक शास्त्र के प्रवर्तक हैं, जो शील के समुद्र हैं, और जो वृद्धावस्था से रहित हैं ऐसे आप अरिष्टनेमि जिनेन्द्र ज्ञानरूप विस्तृत किरणों के द्वारा समस्त लोकालोक को प्रकाशित कर अथवा जानकर संसार से मुक्त हुए थे।

द्युतिमद् धांग-रवि-बिम्ब-किरण-जटिलांशुमण्डलः।

नील-जलद-जल-राशि-वपुः सह बन्धुभिर्गरुडकेतुरीश्वरः॥

हलभृच्च ते स्वजनभक्ति-मुदित-हृदयौ जनेश्वरौ।
धर्म-विनय-रसिकौ सुतरां, चरणाऽरविन्द-युगलं प्रणेमतुः॥

कमल पत्र सम नाथ आपके, विकशित निर्मल चरण ललाम।

सुरपति मुकुट रत्न की किरणें, फैलाकर पद करे प्रणाम॥3॥

अतिसुन्दर नख शशि किरणों से, अंगुलि का है अग्रिम भाग।

ऋषि विद्वान स्वसाधक जिनको, नमते कर स्तुति अनुराग॥4॥

अन्वयार्थ— हे भगवन्! मोक्षरूपी स्वार्थ में जिनके मन नियंत्रित हैं जो उत्तम बुद्धि से युक्त हैं और जो गणोपेमिजिणाणं “इस सात अक्षर वाले मंत्र से अथवा सामान्य स्तुति से वाचाल हैं ऐसे गणधरादि बड़े बड़े ऋषि आपके उस चरणयुगल को प्रणाम करते हैं जो कि इन्द्रों के मुकुटों में लगे हुए मणियों और रत्नों की किरणों के समूह से चुम्बित हैं निर्मल उज्ज्वल है जिनका तलभाग खिले हुए कमलदल के समान लालवर्ण का हैं तथा जिनकी अंगुलियों का स्थान नखरूपी चन्द्रमा की किरणों के परिवेष से अत्यंत मनोहर अग्रभाग से सहित है।

ककुदं भुवः खचरयोषि-दुषित-शिखरैरलङ्कृतः।

मेघ-पटल-परिवीत-तटस्त्व, लक्षणानि लिखितानि वज्रिणा॥

वहतीति तीर्थमृषिभिश्च, सततमभिगम्यतेऽद्य च।

प्रीति-वितत-हृदयैः परितो, भृशमूर्जयन्त इति विश्रुतोऽचलः॥

रवि की किरणों सम हैं किरणें, जिसकी दिव्य सुदर्शन चक्र।

गरुण केतु श्यामल तन धारी, नारायण स्वामी नर 'शक्र'॥5॥

हलधर भ्राता सहित स्वजन युत, धर्म रसिक नत प्रमुदित चित्त।

नमै सहज ही चरण युगल में, नाथ आपके सौख्य निमित्त॥6॥

अन्वयार्थ— हे भगवन्! कांतिमान सुदर्शनचक्र रूपी सूर्य बिम्ब की किरणों से जिनकी कांति का मण्डल व्याप्त हो रहा है नील मेघ और समुद्र के समान जिनका श्याम शरीर है अथवा नीलकमल के पत्रों के समान जिनका श्याम शरीर है तथा जो तीन खण्ड पृथिवी के स्वामी है ऐसे श्रीकृष्ण और बलभद्र इस प्रकार आत्मबन्धु की भक्ति से जिनके चित्त प्रसन्न हो रहे थे जो लोक के स्वामी थे और जो धर्मार्थ विनय के

रसिक थे ऐसे दोनों भाईयों ने अपने अन्य भाईयों के साथ आपके चरणकमलों के युगल को बार बार प्रणाम किया था।

बहिरन्तरप्युभयथा च, करणमविधाति नाऽर्थाकृत्।
नाथ! युगपदखिलं च सदा, त्वमिदं तलाऽऽमलकवद्-विवेदिथ॥
अत एव ते बुध-नुतस्य, चरित-गुणमद्भुतोदयम्।
न्याय-विहितमवधार्य जिने, त्वयि सुप्रसन्न-मनसः स्थिता वयम्॥

सेवित जो विद्या धरियों के, पृथ्वी के स्कंध समाना,
मेघा वेष्टित लिखे आपके, जिस पर हरि ने लक्षण गाना॥7॥
तीर्थ जहाँ पर अब भी करते, प्रीति सहित ऋषि वर्ग विहार।
विश्रुत अचल अतः कहलाए, ऊर्जयन्त गिरवर गिरनार॥8॥

अन्वयार्थ— जो पृथिवी का ककुद है—बैल के कन्धे के समान ऊंचा तथा शोभा उत्पन्न करने वाला है, जो विद्याधरों की स्त्रियों से सेवित शिखरों के द्वारा सुशोभित है, जिसके तट मेघों के समूह से घिरे रहते हैं जो इन्द्र के द्वारा लिखे हुए आपके चिन्हों को धारण करता है इसीलिए तीर्थस्थान है, हमेशा तथा आज भी प्रीति से विस्तृतचित्तवाले ऋषियों के द्वारा जो सब ओर से अत्यधिक सेवित है ऐसा वह अतिशय प्रसिद्ध ऊर्जयन्त नाम का पर्वत है।

तमाल-नीलैः सधनुस्तडिद्गुणैः प्रकीर्ण-भीमाऽशनि-वायु-वृष्टिभिः।
बलाहकैर्वैरि-वशैरुपद्रुतो, महामना यो न चचाल योगतः॥

अखिल विश्व के विशद ज्ञान में, अन्तर्बाह्य इन्द्रियाँ व्यर्थ
नहीं है इनसे लाभ आपको, और ना ये कुछ करें अनर्था॥9॥
चारु चरित है चित्त आपका, विद्वद्वृद्ध इसी से नाथ।
किरके चित्त पवित्र आए हम, निश्चित चरण झुकाने माथ॥10॥

अन्वयार्थ— हे स्वामिन्! आप इस समस्त संसार को एक साथ और सर्वदा हस्ततल पर रखे हुए स्फटिक के समान जानते हैं तथा आपके इस जानने में बाह्य और आभ्यन्तर इन्द्रियाँ पृथक् पृथक् और दोनों प्रकार से बाधक नहीं है एवं उपकारक भी नहीं है इसीलिए विद्वानों के द्वारा स्तुत आपके आश्चर्य कारक अभ्युदय से युक्त तथा न्याय सिद्ध- आगमनज्ञान

से सिद्ध स्वकार्य की प्रसाधकता का निश्चयकर हम अत्यंत प्रसन्नचित्त होते हुए आप जिनेन्द्र में स्थित हुए हैं अपने कार्य का साधक समझ आपकी शरण में आये हैं।

पार्श्वनाथ

बृहत्फणा-मण्डल-मण्डपेन यं, स्फुरत्तडित्पिंग-रुचोपसर्गिणम्।
जुगूह नागो धरणो धराधरं, विराग-संध्या-तडिदम्बुदो यथा॥1॥

बादल काले काले जिनमें, चमकें तीक्ष्ण बिजलियाँ जोरा।
वज्र भयंकर ख से कड़के, वायु चले बरसें घन घोर॥
किए उपद्रव घोर कमठ ने, किन्तू वे ऋषि महा महाना।
हुए ना विचलित परमयोग से, जिनका ऐसा दुर्धर ध्यान॥1॥

अन्वयार्थ— तमाल वृक्ष के समान नीलवर्ण, इन्द्र धनुषों की बिजली रूप डोरियों से सहित, भयंकर वज्र आंधी और वर्षा को बिखेरने वाले ऐसे शत्रु के वशीभूत मेघों के द्वारा उपद्रव होने पर भी उत्कृष्ट धैर्य के धारक जो पार्श्वनाथ भगवान् शुक्लध्यान रूप योग से विचलित नहीं हुए थे।

स्व-योग-निस्त्रिंश-निशात-धारया, निशात्य यो दुर्जय-मोह-विद्विषम्।
अवापदाऽऽर्हन्त्यमचिन्त्यमद्भुतं, त्रिलोक-पूजाऽतिशयाऽऽस्पदं पदम्॥2॥

जिसका फण मण्डल विशाल था, आया नागदेव धरणेन्द्र।
ऊपर करके फल मण्डल को, किए सुरक्षित पार्श्व जिनेन्द्र॥
फण के नीचे हुए सुशोभित, विद्युत् बिम्ब सन्विनत ईश।
श्याम घटा से वेष्टित हो ज्यों, विद्युत् युत पर्वत का शीशा॥2॥

अन्वयार्थ— उपसर्ग से युक्त जिन पार्श्वनाथ भगवान् को धरणेन्द्र नामक नागकुमार देव ने चमकती हुई बिजली के समान पीली कांति से युक्त बहुत भारी फणामण्डल रूपी मण्डल के द्वारा उस तरह वेष्टित कर लिया था जिस तरह कि काली संध्या के समय बिजली से युक्त मेघ पर्वत को वेष्टित कर लेता है।

यमीश्वरं वीक्ष्य विधूत-कल्मषं, तपोधनास्तेऽपि तथा बुभूषवः।
वनौकसः स्व-श्रम-वन्ध्य-बुद्धयः, शमोपदेशं शरणं प्रपेदिरे॥3॥

विकट समय में आत्म योग की, लेकर आप प्रखर तलवार।
है दुर्जेय मोह अन्तर रिपु, जिस पर किया आपने बार।।
प्राप्त किया हे नाथ शीघ्र ही, वह पद अद्भुत और अचिन्त्या।
अतिशय पूज्य रहा त्रिलोक ने, कहते हैं जिनको आर्हन्त्या।।3।।

अन्वयार्थ— जिन्होंने अपने शुक्लध्यानरूपखड्ग की तीक्ष्ण धारा के द्वारा मोह रूपी दुर्जयशत्रु को नष्ट कर अचिन्तनीय आश्चर्य कारण गुणों से युक्त त्रिलोक की पूजा के अतिशय के स्थान आर्हन्त्य पद को प्राप्त किया था।

स सत्य-विद्या-तपसां प्रणायकः, समग्रधीरुग्रकुलाऽम्बरांशुमान्।
मया सदा पार्श्वजिनः प्रणम्यते, विलीन-मिथ्यापथ-दृष्टि-विभ्रमः।।4।।

बनवासी जो रहे तापसी, देखे जो जित कर्म जिनेश।
व्यर्थ परिश्रम से अपने के, मन में हुए विरक्त विशेष।।
तत्क्षण पहुँचे बनने को वे, शरण आपकी आप समान।
शांति पथ का दिया आपने, सच्चा जिनवर उपदेश महान।।4।।

अन्वयार्थ— जिन पार्श्वनाथ भगवान् को समस्त लोक के ईश्वर तथा घातिचतुष्क रूप पाप से रहित देखकर उन्हीं के समान होने के इच्छुक बनवासी वे तपस्वी भी अपने प्रयास में निष्फल बुद्धि होते हुए मोक्ष मार्ग अथवा शांति का उपदेश देने वाले भगवान् पार्श्वनाथ की शरण को प्राप्त हुए थे।

कीर्त्या भुवि भासि तथा, वीर! त्वं गुण-समुच्छ्रया भासितया,
भासोडुसभाऽऽसितया, सोम इव व्योम्नि कुन्द-शोभासितया।।5।।

दिनकर उग्रवंश अंवर के, पूर्ण अवस्थित जिनका ज्ञान।
मोह हटाकर मिथ्या पथ का, किया सत्य निर्दिष्ट प्रमाण।।
सत्य ज्ञान तप नायक हैं जो, जिनकी मूर्ति महा अभिराम।
ऐसे पार्श्व जिनेन्द्र सूर्यपद, करते है हम विशद प्रणाम।।5।।

अन्वयार्थ— जो सत्य विद्याओं तथा तपस्याओं के प्रणेता थे, जो पूर्ण केवल ज्ञान के धारक थे जो उग्र वंश रूपी कुल के चन्द्रमा थे और जिन्होंने मिथ्या मार्ग संबंधी कुदृष्टियों से उत्पन्न विभ्रमों को नष्ट कर

दिया था वे पार्श्व जिनेन्द्र मुझ समन्तभद्र के द्वारा हमेशा प्रणत किये जाते हैं—मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ।

महावीर

तव जिन! शासन-विभवो जयति कलावपि गुणाऽनुशासन-विभवः।
दोष-कशाऽसनविभवः स्तुवन्ति चैनं प्रभा-कृशाऽसनविभवः।।1।।

कीर्ति विश्व में भासित जिनकी, गुण शोभाश्रित होकर व्याप्त।
सोहे ऋक्ष सभा सित में ज्यों, सोम नमाश्रित शोभा प्राप्त।।1।।

अन्वयार्थ— हे वर्धमान जिनेन्द्र! आप पृथिवी पर आत्मा और शरीर सम्बन्धी गुणों से उत्पन्न सुशोभित अथवा उज्ज्वल उस ख्याति से नक्षत्रों की सभा में आसित स्थित, एवं कुन्दकुसुम की शोभा के समान कांति से आकाश में चन्द्रमा के समान सुशोभित होते हैं।

अनवद्यः स्याद्वाद-स्तव दृष्टेष्टाऽविरोधतः स्याद्वादः।
इतरो न स्याद्वादो स द्वितयविरोधान्मुनीश्वराऽस्याद्वादः।।2।।

शासन वैभव नाथ आपका, भवहर कलि में भी मनहार।
करे पराभव दोष राशि का, भव-भव में स्तुति विस्तार।।2।।

अन्वयार्थ— हे वीर जिनेन्द्र! भव्यजीवों के भव को नष्ट करने वाला आपके प्रवचन का यथावस्थित समस्त पदार्थों के प्रतिपादन रूप तुम्हारा शासन कलिकाल में भी जयवन्त है—सर्वोत्कृष्ट रूप से वर्तमान है और प्रभा-ज्ञानादितेज से आसनविभुओं-लोक के तथाकथित हरिहरादि स्वामिओं को कृशमहत्वहीन करने वाले दोष रूप चाबुकों के निराकरण करने में समर्थ गणधरादि देव आपके इस शासन विभव की प्रवचन सामर्थ्य की स्तुति करते हैं।

त्वमसि सुरासुर-महितो, ग्रन्थिकसत्त्वाऽऽशयप्रणामाऽमहितः।
लोक-त्रय-परमहितो, जनावरणज्योतिरुज्ज्वलद्धाम-हितः।।3।।

स्याद्वाद निर्दोष आपका, करता अविरोधी स्याद्वाद।
स्याद्वाद और नहीं आपसे, जो विरुद्ध वह अस्याद्वाद।।3।।

अन्वयार्थ— हे मुनिनाथ! स्यात् इस कथंचित् अर्थ के वाचक शब्द से सहित आपका स्यादस्तीत्यादि अनेकांत रूप कथनन प्रत्यक्ष तथा आगम आदि प्रमाणों से विरोध न होने के कारण निर्दोष है। इसके विपरीत 'स्यात्' इस शब्द से रहित अन्य जो एकान्त रूप कथन है वह दृष्ट और इष्ट-प्रत्यक्ष तथा अनुमान आदि प्रमाणों से विरोध होने के कारण निर्दोष नहीं है।

सभ्यानामभिरुचितं, दधासि गुण-भूषणं श्रिया चारु-चितम्।
मग्नं स्वस्यां रुचितं जयसि च मृगलाञ्छनं स्वकान्त्या रुचितम्॥4॥

महितल उज्ज्वल महति सुरासुर, नाथ आप हो ज्ञानागार।

हित बंचित जन रहे अन्धसम, हे प्रभु विश्व परम हितकार॥4॥

अन्वयार्थ— हे भगवन्! आप सुरों तथा असुरों से पूजित हैं, किन्तु मिथ्यादृष्टि प्राणियों के अभक्त हृदय से प्राप्त होने वाले प्रणाम से पूजित नहीं है, आप तीनों लोकों के परम हितकारी हैं, और केवलज्ञान से प्रकाशमान मुक्तिरूप स्थान को प्राप्त है।

त्वं जिन! गत-मद-माय-स्तव भावानां मुमुक्षु-कामद! मायः।
श्रेयान् श्रीमदमाय-स्त्वया समादेशि सप्रयाम-दमाऽयः॥5॥

श्री के धारी रुचित सम्यजल, रुचित गुणों के धारी देव।

तमहर विजित चन्द्र हे गतमद, तन्मय निज रुचि हो स्वयमेव॥5॥

अन्वयार्थ— हे भगवन्! आप समवशरण सभा में स्थित भव्यजीवों के रुचिकर, तथा अष्टप्रातिहार्य रूप लक्ष्मी से सुन्दरता पूर्वक व्याप्त गुणों के भूषण को अथवा गुणरूप आभूषण को धारण करते हैं, और अपनी कांति के द्वारा स्वकीय कांति में निमग्न सुंदर उस चन्द्रमा को जीतते हैं।

गिरिभित्त्यवदानवतः, श्रीमत दव दन्तिनः स्रवदानवतः।
तव शम-वादानवतो, गतमूर्जितमपगत-प्रमादानवतः॥6॥

नाथ आप हो गत मम माया, हे मुमुक्षु के मोक्षोपाय।

भव्य जनो के हित उपदेशी, श्रेयरूप हो सदा सहाय॥6॥

अन्वयार्थ— हे मोक्षाभिलाषी जीवों के मनोरथ को देने वाले वीरजिनेन्द्र

आप गर्व और माया से रहित हैं तथा आपका जीवादि पदार्थ विषयक केवलज्ञान अथवा आगम रूप प्रमाण अत्यन्त श्रेष्ठ अथवा प्रशंसनीय है। हे भगवान्! आपने लक्ष्मी के मद को नष्ट करने वाला अथवा स्वर्ग और मोक्ष को प्राप्त कराने वाली श्री लक्ष्मी से युक्त और माया से रहित श्रेष्ठ एवं प्रशस्त इन्द्रिय विजय का उपदेश दिया है।

बहुगुण-सम्पदसकलं, परमतमपि मधुर-वचन-विन्यास-कलम्।
नय-भक्त्यवतं-कलं, तव देव! मतं समन्तभद्रं सकलम्॥7॥

वर्षक दान वारि दन्तीसम, करता गिरि को घात प्रदान।

कर विहार प्रभु अभय दान युत, मुख से दिए शांति का दान॥7॥

अन्वयार्थ— हे भगवन्! जिस प्रकार पहाड़ की कटनीयों में पराक्रम से युक्त अर्थात् उनका विदारण करने वाले उत्तम जाति विशिष्ट तथा झरते हुए मद से सहित हाथी का बलशाली अर्थात् रूकावट से रहित गमन होता है उसी तरह दोषों के उपशमन का उपदेश देने वाले शास्त्रों के रक्षक तथा अभयदान से युक्त आपका उत्कृष्ट गमन-विहार हुआ था।

सकल गुणान्वित है न मतान्तर, यद्यपि मधुर वचन संयुक्त,
समन्तभद्र जी आपका स्वामी, पन्थ नयाक्षय भूषणयुक्त॥8॥

रहित मतान्तर सकल गुणान्वित, मधुर वचन संयुक्त महान।

समन्तभद्र स्वामी जी का है, पन्थ नयाक्षय भूषण वान॥8॥

अन्वयार्थ— हे वीर जिन देव! अन्य एकान्तवादियों का शासन कर्णप्रिय वचनों के विन्यास से मनोज्ञ होता हुआ भी अत्यधिक गुणरूप सम्पत्ति से विकल है परन्तु आपका शासन वैगमादि नयों से उत्पन्न स्यादस्तीत्यादि भङ्ग रूप आभूषणों से मनोज्ञ अथवा नयों की उपासना रूप कर्णाभरण को देने वाला है, सब ओर से कल्याण कारक है और पूर्ण है।

स्तुति

रागद्वेष जेता हो अनुपम, आप लोक में हे सर्वज्ञ।
दिया विशद उपदेश सभी को, जो थे दुखी लोक में अज्ञ॥

जग उद्धारक भाव आपके, आये हो हे नाथ उदार।
लक्ष्य पूर्ण साधन कर अपना, आप विश्व के पहुँचे पार॥1॥
पहिचानो निज शक्ति अपनी, व्यर्थ में क्यों पाते हो क्लेश।
धनपति हो दारिद्र्य बने क्यों, दिव्य आपने यह उपदेश॥
अजर अमर होकर क्यों डरते, समझों अपना निजस्वरूप।
धोकर मोह कालिमा को तुम, बनो आत्म नगरी के भूप॥2॥
आत्म बोध ही कठिन तपस्या, आत्म बोध है शुद्ध चरित्र।
आत्म बोध कर पाया प्रभु ने, देख मुक्ती का मार्ग पवित्र॥
हे जिनेन्द्र! है अखिल विश्व पर, अमित आपका यह उपकार।
नत है इसीलिए चरणों में, 'विशद' आपके यह संसार॥3॥
जयपुर सांगानेर में आए, पार्श्वनाथ शुभनगर महान।
वीर निर्वाण पच्चिस सौ व्यालिस, कार्तिक पर्व अठाई जान॥
तिथी अष्टमी से बारस तक, हुआ यहाँ पर पंचकल्याण।
वृहत स्वयंभू स्तोत्र पाठ का, "विशद" हुआ पूरा गुणगान॥4॥

इति श्री स्वयंभूस्तोत्र